# हज की हक़ीक़त

## हज की रूह और उसका पैग़ाम

मौलाना वहीदुद्दीन खान

# हज की हक़ीक़त

## हज की रूह और उसका पैग़ाम

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ

सी पी एस हिन्दी संपादकीय टीम

Goodword Books
CPS International

First published 2026
This book is copyright free

This booklet is a compilation and Hindi translation from Maulana Wahiduddin Khan's Urdu book entitled *Haqeeqat-e-Hajj*.

Goodword Books
A-21, Sector 4, Noida-201301, Delhi NCR, India
Mob. +91 8588822672
info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com

CPS International
Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market, New Delhi-110 013, India
Mob. +91-9999944119
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

Center for Peace and Spirituality USA
391 Totten Pond Road, Suite 402,
Waltham MA 02451, USA
Mob. 617-960-7156
email: info@cpsusa.net

# विषय सूची


| | |
|---|---|
| हज क्या है | 5 |
| हज से मुतअल्लिक़ क़ुरान की आयतें और हदीसें | 5 |
| हज की तर्तीब | 7 |
| हज की अहम जगहें | 8 |
| इस्तिलाहात-ए-हज (हज से जुड़े विशेष शब्द) | 11 |
| हज में मना की गई चीज़ें | 15 |
| हज की हक़ीक़त | 16 |
| हज ख़ुदा की तरफ़ सफ़र | 17 |
| हज सबसे श्रेष्ठ इबादत | 19 |
| हज का पैग़ाम | 20 |
| रसूलुल्लाह (सल्ल०) का हज | 25 |
| एक सबक़ | 26 |
| हज्जे-विदा के ख़ुतबे का संदेश | 26 |
| हज से मुतअल्लिक़ कुछ अहम बातें | 28 |
| हज्जे मबरूर | 30 |
| ग़ौर करने की बातें | 30 |

| | |
|---|---|
| हज एक तारीख़ साज़ (इतिहास बनाने वाला) अमल | 32 |
| हज इत्तिहाद का ज़रिया | 37 |
| हज एक ज़िंदा अमल | 37 |
| हज का जज़्बाती पहलू | 39 |
| अल्लाह के शआइर (अल्लाह की निशानियाँ) | 41 |
| हज अल्लाह से मुलाक़ात है | 45 |
| मुसीबत में राहत | 47 |
| योग्यता के अनुसार लाभ | 49 |
| हज ईमान की तजदीद (नवीकरण) है | 49 |
| हज और इत्तेहाद | 51 |
| तौहीद का आलमी मरकज़ | 51 |
| इत्तेहाद का मरकज़ | 54 |
| परहेज़गारी का सबक़ | 57 |
| ज़्यादा एहतिमाम | 59 |
| बात-चीत में एहतियात | 61 |
| हिंसा  से परहेज़ | 62 |
| पाबंद ज़िंदगी | 63 |
| ख़ुद को भुला देना | 63 |
| हज के मसाएल | 65 |
| मदीना की हाज़िरी | 70 |

# हज क्या है

हज इस्लाम का एक अहम स्तंभ है। दूसरी इबादतों की तरह इसका भी असली मकसद तक़वा (परहेज़गारी) है, लेकिन इसकी एक खास बात यह भी है कि यह अबुल-अंबिया हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की ज़िंदगी से जुड़ा हुआ है।

हज का मकसद यह है कि अल्लाह का जो बंदा हज के मक़ामात तक पहुंच सकता है, वह अपनी जिंदगी में कम से कम एक बार जरूर वहां पहुंचे। वहां अलग-अलग आमाल के जरिए वह अपनी पूरी बंदगी का सबूत दे। वह इब्राहीमी सरज़मीन पर पहुंचकर अलामती (प्रतीकात्मक) तौर पर उनके आमाल को दोहराए और इस तरह अपने जाहिर और बातिन को इब्राहीमी रंग में रंगने का जज़्बा पैदा करे।

# हज से मुतअल्लिक़ क़ुरान की आयतें और हदीसें

हज को अदा करना सभी मुसलमानों पर फ़र्ज़ है (जबकि सामर्थ्य हों)। यह इस्लाम के पाँच बुनियादी अरकान (स्तंभों) में से एक ज़रूरी स्तंभ है। यहाँ हज से संबंधित कुछ आयतें और हदीसें पेश की जाती हैं:

## आयतें

"और लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो इस घर तक पहुंचने की ताक़त रखता हो वह इसका हज करे और जो कोई इनकार करे तो अल्लाह तमाम दुनिया वालों से बे-परवा है।" (3:97)

"बेशक पहला घर जो लोगों के लिए बनाया गया वह वही है जो

मक्का में है, बरकत वाला और सारे जहान के लिए हिदायत का मरकज़।" (3:96)

"और लोगों में हज का एलान कर दो, वे तुम्हारे पास आएंगे। पैदल और दुबले ऊंटों पर सवार होकर जो दूर दराज़ रास्तों से आएंगे, ताकि वे अपने फ़ायदे की जगह पर पहुंचें और चन्द मालूम दिनों में उन पशुओं पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उन्हें दिए हैं। तो उसमें से खाओ और तंगहाल ज़रूरतमंद को खिलाओ, तो उन्हें चाहिए कि वे अपना मैल कुचैल दूर कर दें। और अपनी मन्नतें पूरी करें। और इस क़दीम (प्राचीन) घर का तवाफ़ (परिक्रमा) करें।" (22:27-29)

## हदीसें

"इस्लाम की बुनियाद पाँच चीज़ों पर है—इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (उपास्य) नहीं है और यह कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं, नमाज़ क़ायम करना, ज़कात अदा करना, बैतुल्लाह का हज करना और रमज़ान के रोज़े रखना।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 8; *सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 16)।

"ऐ लोगो, अल्लाह ने तुम पर हज फ़र्ज़ किया है, तो तुम हज करो।" (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 3236)।

"जो शख़्स अल्लाह के लिए हज करे और न कोई बेहयाई की बात करे और न कोई गुनाह करे, तो वह अपने गुनाहों से इस तरह लौट आएगा जैसा वह उस दिन था जब उसकी माँ ने उसे पैदा किया था।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1521; *सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1350)।

# हज की तर्तीब

i. घर से निकलना।

ii. मीक़ात की हद पर पहुँचकर एहराम बाँधना।

iii. ग़ुस्ल या वुज़ू करके शहर मक्का में दाख़िल होना।

iv. मस्जिदे हराम में दाख़िल होना और काबा का तवाफ़ सुन्नत तरीक़े पर करना।

v. तवाफ़ के बाद सफ़ा व मरवा के बीच सई करना।

vi. 8 ज़िलहिज्जा को तवाफ़े क़ुदूम (मक्का पहुँचने पर पहला तवाफ़) करके मिना के लिए रवाना होना।

vii. 9 ज़िलहिज्जा को अरफ़ात में जाना और ज़ुहर व असर की नमाज़ मिलाकर पढ़ना।

viii. 9 ज़िलहिज्जा की रात को मुज़दलिफ़ा पहुँचकर मग़रिब व इशा की नमाज़ इकट्ठा पढ़ना, और रात को वहीं ठहरना।

ix. 10 ज़िलहिज्जा को मुज़दलिफ़ा से चलकर मिना में आना, और जमरा अक़बा पर कंकरियाँ मारना।

x. कुर्बानी करना और सर के बाल मुँडाना।

xi. 10 ज़िलहिज्जा को सर मुँडाने के बाद मक्का जाकर तवाफ़े ज़ियारत करना और फिर मिना वापस आना, और अगर 8 ज़िलहिज्जा को सई न की हो तो सफ़ा व मरवा के दरमियान सई करना।

xii. 12 ज़िलहिज्जा को मिना में क़ियाम, तीनों जमरात पर तरतीब से कंकरियाँ मारना।

xiii. अब आप हाजी हो गए। 12 ज़िलहिज्जा को मक्का वापस जाकर तवाफ़ कीजिए और आबे ज़मज़म पीकर ख़ुदा का शुक्र अदा कीजिए।

## हज की अहम जगहें

**मक्का** : अरब का मशहूर शहर जहाँ हज़रत इब्राहीम ने काबा की तामीर की थी।

**मदीना** : इसका पुराना नाम यस्रिब था। रसूलुल्लाह (सल्ल०) हिजरत करके यहाँ आए तो इसका नाम मदीना पड़ गया।

**बद्र** : वह जगह जहाँ मक्का वालों के साथ पहली जंग पेश आई।

**शमीसिया** : वह जगह जहाँ रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने सुल्हे हुदैबिया के मौक़े पर अपने असहाब से बैअत-ए-रिज़वान ली थी।

**यलमलम** : हिंदुस्तान, पाकिस्तान, यमन आदि की तरफ़ से आने वाले हाजियों की मीक़ात (एहराम बाँधने का निर्धारित स्थान) है।

**जुहफ़ा** : राबिग़ के दक्षिण-पूर्व में 17 किलोमीटर के फ़ासले पर वाक़े है। यह मिस्र, शाम, यूरोप आदि की तरफ़ से आने वाले हाजियों की मीक़ात (एहराम बाँधने का निर्धारित स्थान) है।

| | | |
|---|---|---|
| **ज़ाते इरक़** | : | यह इराक़ की तरफ़ से आने वाले हाजियों की मीक़ात (एहराम बाँधने का निर्धारित स्थान) है। |
| **क़रनुल-मनाज़िल** | : | एक पहाड़ी। यह नज्द वालों की मीक़ात (एहराम बाँधने का निर्धारित स्थान) है। |
| **ज़ुलहुलैफ़ा** | : | मौजूदा नाम अब्यार अली। यह मदीना की तरफ़ से आने वालों की मीक़ात है। |
| **हिरा** | : | मक्का के क़रीब एक ग़ार (गुफा) जिसमें रसूलुल्लाह (सल्ल०) पर पहली वह्य (revelation) उतरी थी। |
| **उहुद** | : | मदीना के क़रीब एक पहाड़ जहाँ मशहूर ग़ज़वा-ए-उहुद पेश आया था। |
| **सफ़ा** | : | बैतुल्लाह के क़रीब की एक पहाड़ी जहाँ से हाजी लोग सई  शुरू करते हैं। |
| **मरवा** | : | एक पहाड़ी चट्टान जहाँ सई ख़त्म की जाती है। |
| **जबले नूर** | : | मक्का के क़रीब एक पहाड़ जिसपर ग़ार-ए-हिरा स्थित है। |
| **जबले सौर** | : | एक पहाड़ जिसके ग़ार में रसूलुल्लाह (सल्ल०) हिजरत के मौक़े पर तीन रात ठहरे। |
| **जबले रहमत** | : | मैदाने अरफ़ात की पहाड़ी जहाँ रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने हज्जतुल विदा का ख़ुत्बा दिया था। |

**जबले तकबीर** : मिना में एक पहाड़ का नाम है।

**जबले क़ुज़ह** : मुज़दलिफ़ा में वाक़े एक पहाड़ का नाम है।

**जन्नतुल मुअल्ला** : मक्का का क़ब्रिस्तान, जिसमें हज़रत ख़दीजा, वग़ैरह की क़ब्रें हैं।

**जन्नतुल बक़ीअ** : मदीना का बड़ा क़ब्रिस्तान।

**मस्जिदे क़ुबा** : मदीना के क़रीब एक मस्जिद जो इस्लाम में सबसे पहले बनाई गई।

**मस्जिदे क़िब्लतैन** : वादी अकीक़ के क़रीब एक मस्जिद जिसमें क़िबला बदलने का हुक्म नाज़िल हुआ।

**मस्जिदे ख़ैफ़** : मिना में एक मस्जिद। यहाँ हाजी 8 ज़िलहिज्जा को ठहरते हैं।

**मस्जिदे नमरा** : अरफ़ात के किनारे एक मस्जिद जहाँ 9 ज़िलहिज्जा को ज़ुहर व असर की नमाज़ जमा करके पढ़ी जाती है।

**मसाजिदुल ख़म्सा** : मदीना की पाँच मस्जिदें। कहा जाता है कि ग़ज़वा-ए-अहज़ाब के मौक़े पर यहीं ख़ंदक़ खोदी गई थी।

**मुज़दलिफ़ा** : अरफ़ात और मिना के दरमियान एक मैदान जो मिना से पूरब की ओर दो मील के फ़ासले पर है।

**मशअरुल हराम** : मुज़दलिफ़ा में एक मक़ाम जहाँ ठहरा जाता है।

**वादी-ए-मुहस्सिर** : मुज़दलिफ़ा से मिला हुआ एक मैदान जहाँ पर ख़ुदा ने असहाबे फ़ील पर अज़ाब नाज़िल करके उनको हलाक कर दिया था।

**बि'रे उस्मान** : मदीना के क़रीब एक पुराना कुआँ है जो हज़रत उस्मान से संबंधित है।

**मिना** : एक मक़ाम का नाम जो मक्का से तीन मील के फ़ासले पर है। यहीं जमरात पर रमी की जाती है।

**अरफ़ात** : एक बड़ा मैदान जहाँ हाजी 9 ज़िलहिज्जा को ठहरते हैं।

# इस्तिलाहात-ए-हज
# (हज से जुड़े विशेष शब्द)

**मीक़ात** : मक्का से पहले की वह जगह जहाँ से एहराम बाँधा जाता है।

**एहराम** : हज या उमरा की नियत करके ख़ास तरह का सादा लिबास पहनना।

**तलबिया** : "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक" वाली पूरी दुआ पढ़ना।

**तहलील** : "ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" पढ़ना।

**तवाफ़** : खाना-ए-काबा के गिर्द सात चक्कर लगाना। तवाफ़ की

कई क़िस्में हैं, मिसाल के तौर पर तवाफ़े क़ुदूम (पहला तवाफ़), तवाफ़े ज़ियारत (फ़र्ज़ तवाफ़), तवाफ़े विदा (आख़िरी तवाफ़)।

**मताफ़** : खाना-ए-काबा के आस-पास की वह जगह जहाँ तवाफ़ किया जाता है।

**उमरा** : हज असग़र (छोटा हज), यानी एहराम बाँधकर काबा का तवाफ़ करना और सफ़ा व मरवा के दरमियान सई करना।

**हज इफ़राद** : सिर्फ़ हज का एहराम बाँधना। वह शख़्स मुफ़रिद कहा जाता है जो इस तरह एहराम बाँधे।

**क़िरान** : हज और उमरा दोनों का एहराम एक साथ बाँधना। ऐसा करने वाले को क़ारिन कहा जाता है।

**तमत्तो** : हज के ज़माने में एहराम बाँधकर उमरा करना और फिर कुछ दिनों के लिए एहराम खोलकर हज के लिए दोबारा एहराम बाँधना। ऐसे शख़्स को मुतमत्ते कहा जाता है।

**रमल** : तवाफ़ के वक़्त अकड़कर चलना और कंधों को हिलाना (यह सिर्फ़ मर्दों के लिए है)।

**इज़्तिबा** : एहराम की दो चादरों में से ऊपर वाली चादर को दाएँ बगल से निकालकर बाएँ कंधे पर डालना।

**सई** : सफ़ा और मरवा के बीच सात बार आना-जाना (सफ़ा और मरवा के बीच सात बार दौड़ना)।

**मीलैन अख़ज़रैन** : वह सब्ज़ स्तंभ जिनके दरमियान सई करने वाले को तेज़ चलना होता है (सिर्फ़ मर्दों के लिए है)।

**शौत** : काबा के गिर्द एक चक्कर या सफ़ा से मरवा के दरमियान एक चक्कर लगाने को शौत कहते हैं।

**इस्तिलाम** : हजरे अस्वद को छूना या उसका बोसा लेना या दोनों हथेलियों को उस तरफ़ करके चूमना।

**वुक़ूफ़** : अरफ़ात के मैदान में और मुज़दलिफ़ा में पहुँचकर कुछ देर ठहरना।

**रमी** : जमरा पर कंकरियाँ फेंकना। जमरात तीन हैं: जमरा-ए-ऊला, जमरा-ए-वुस्ता, जमरा-ए-अक़बा।

**जमरात** : जमरा-ए-ऊला, जमरा-ए-वुस्ता, जमरा-ए-अक़बा। यह तीनों मस्जिद ख़ैफ़ के पास हैं।

**तक़सीर** : कुर्बानी के बाद बाल छोटे करना।

**तहलीक़** : कुर्बानी के बाद पूरे सर के बाल मुंडवाना।

**हतीम** : खाना-ए-काबा से मिली हुई एक जगह जो पहले उसका हिस्सा थी, मगर अब उससे बाहर है।

**हजरे अस्वद** : वह पत्थर जो काबा के दक्षिण-पूरब कोने में लगा हुआ है।

| | | |
|---|---|---|
| **आफ़ाक़ी** | : | वह हाजी जो हज के लिए हुदूद-ए-मीक़ात के बाहर से आया हो। |
| **अहले हिल** | : | वह लोग जो मीक़ात की हुदूद के अंदर और हुदूद-ए-हरम से बाहर रहते हों। |
| **अहले हरम** | : | मक्का और हरम में बसने वाले लोग। |
| **हदी** | : | वह जानवर जो कुर्बानी की नियत से हाजी अपने साथ ले जाते हैं। |
| **तक़लीद** | : | कुर्बानी के जानवर के गले में निशानी के लिए पट्टा बाँधना। |
| **रफ़स** | : | बेहूदा बातें करना। ऐसी बातें हज के दिनों में हराम हैं। |
| **नह़र** | : | क़ुर्बानी, जो हाजी रमी के बाद मिना में करते हैं। |
| **मुल्तज़म** | : | हजरे अस्वद और काबा के दरवाज़े के दरमियान की जगह जहाँ दुआ का ख़ास इह्तेमम किया जाता है। |
| **रुक्ने अस्वद** | : | काबा का चौथा कोना जहाँ से हजरे अस्वद का इस्तिलाम करके तवाफ़ शुरू किया जाता है। |
| **मक़ामे इब्राहीम** | : | वह पत्थर जिस पर खड़े होकर हज़रत इब्राहीम ने खाना-ए-काबा की तामीर की थी। |
| **कफ़्फ़ारा** | : | हज की अदायगी में ग़लती की तलाफ़ी (compensation) के लिए कुर्बानी देना या सदक़ा (दान) देना। |

# हज में मना की गई चीज़ें

एहराम बाँधने के बाद हाजी पर यह चीज़ें हराम हो जाती हैं:

1. लड़ाई-झगड़ा करना।
2. झूठ बोलना।
3. ग़ीबत और बुराई करना।
4. किसी पर तोहमत लगाना।
5. गाली देना, फ़ह्श बातें करना, वग़ैरह।

**नोट**: यह चीज़ें हर हाल में हराम हैं मगर हज के दौरान इनकी बुराई (severity) बहुत बढ़ जाती है।

6. ज़मीन में रहने वाले जानवरों का शिकार करना या दूसरों को शिकार के लिए उकसाना।
7. बदन के किसी हिस्से का बाल मुँडाना, नाख़ून और मूँछें वग़ैरह कटवाना।
8. मोज़े पहनना, ऐसे जूते पहनना जिनसे पाँव की बीच की हड्डी छुप जाए।
9. अमामा (पगड़ी) बाँधना या टोपी पहनना।
10. सिले हुए कपड़े पहनना, पेड़ की डाली तोड़ना।
11. ख़ुशबू लगाना, तेल लगाना या सूँघना।
12. बीवी से हमबिस्तर होना या लज़्ज़त व मोहब्बत की बातें करना।

# हज की हक़ीक़त

हज इस्लाम का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। बाक़ी इबादतों की तरह इसका मक़सद भी इंसान के अंदर तक़वा पैदा करना है। लेकिन इसकी एक अलग पहचान यह है कि यह हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम), जिन्हें नबियों का पूर्वज कहा जाता है, की जीवन-यात्रा से जुड़ी हुई एक ख़ास इबादत है।

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने काबा की तामीर के बाद बुलंद आवाज़ से पुकारा था कि ऐ लोगो, आओ और अपने रब का हज करो। हज का सफर उसी इब्राहीमी पुकार का जवाब देते हुए "लब्बैक" (मैं हाज़िर हूँ) कहना है। हज के मौसम में हर तरफ़ से "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक" की जो आवाज़ बुलंद होती है, वह उसी इब्राहीमी पुकार का उत्तर है। इसका अर्थ यह है कि हज करने वाला हज़रत इब्राहीम की पुकार पर "लब्बैक" कहते हुए अल्लाह के सामने हाज़िर हो गया है और इस बात के लिए तैयार है कि उसे जो भी आदेश दिया जाए, वह उसको दिल व जान से पूरा करने में लग जाएगा।

हज का लफ़्ज़ी माना (अर्थ) है इरादा करना, ज़ियारत के लिए जाना। शरीअत में हज से मुराद वह सालाना इबादत है जिसमें आदमी मक्का जाकर काबा का तवाफ़ करता है। अरफ़ात के मैदान में ठहरता है। और दूसरे आमाल (कार्य) करता है जिनको हज के मरासिम (प्रक्रियाएँ) कहा जाता है।

हज एक ऐसी इबादत है जिसमें सभी इबादतें शामिल हैं। इसमें माल का खर्च भी है और जिस्म को तकलीफ़ देना भी है। इसमें अल्लाह का ज़िक्र भी है और अल्लाह के लिए क़ुर्बानी भी। हज एक ऐसी इबादत है जिसमें बाक़ी इबादतों की रूह भी किसी न किसी एतिबार से शामिल हो गई है।

हज के फ़राइज़ की अदायगी का मरकज़ अल्लाह का घर (काबा) है जो मक्का में स्थित है। बैतुल्लाह (अल्लाह का घर) एक बंदे की उस पूरी ईमानी ज़िंदगी की याद दिलाता है जिसके शुरू में हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की तारीख़ है और जिसके आखिर में नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की तारीख़। बैतुल्लाह उस वाक़िया का एक याददगारी नमूना है कि किस तरह अल्लाह का एक बंदा अल्लाह के लिए अपना सब कुछ लुटा देता है। किस तरह वह अपनी ज़िंदगी को अल्लाह की मर्ज़ी में ढाल लेता है। किस तरह वह अल्लाह के कार्य में अपने आप को पूरी तरह लगा देता है यहां तक कि इसी हाल में उसकी मौत आ जाए।

## हज ख़ुदा की तरफ़ सफ़र

हज का सफ़र ख़ुदा की तरफ़ सफ़र है। वह दुनिया की ज़िंदगी में अपने रब से क़रीब होने की आखिरी शक्ल है। दूसरी इबादतें अल्लाह तआला की याद हैं, जब कि हज ख़ुद अल्लाह तआला तक पहुंच जाना है। आम इबादत अगर ग़ैब (परोक्ष) की सतह पर ख़ुदा की इबादत है तो हज शहूद (हाज़िरी) की सतह पर ख़ुदा की इबादत है।

हाजी जब काबा के सामने खड़ा होता है तो वह ऐसा महसूस करता है जैसे वह ख़ुद रब्बे काबा के सामने खड़ा हुआ है। काबा का तवाफ़ इस हक़ीक़त का मज़हर है कि बंदा अपने रब को पाकर परवाना वार (पतिंगे की तरह) उसके गिर्द घूम रहा है। जब वह मुल्तज़िम (काबा के दरवाज़े और हजरे अस्वद के बीच की दीवार) को पकड़ कर दुआ करता है तो उसे महसूस होता है गोया उसको अपने मालिक का दामन हाथ आ गया है जिससे वह बेताबी से लिपट गया है और अपनी सारी बात उससे कह देना चाहता है।

हज की यह विशेषता इसलिए है कि उसके अदा करने की जगह एक ऐसा मक़ाम है जहां इलाही तजल्लियां (निशानियाँ) ज़ाहिर होती हैं। जिसको ख़ुदा ने इस मक़सद के लिए चुना है कि वह ख़ुदा-परस्तती वाली ज़िंदगी के अज़ीम दाई हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के दीनी अमल का मरकज़ बने। जहां इस्लाम की बुनियाद पर बनने वाली तारीख़ फैली हुई है। जिसके हर तरफ अल्लाह की ओर से उस मिसाली बदलाव के निशान बिखरे हुए हैं जो आखिरी रसूल की रहनुमाई में चौदह सौ साल पहले आया था।

इस क़िस्म की रिवायतों और खुसुसियतों ने हरम के इलाक़े को असाधारण अहमियत दे दी है। वहां एक ख़ास तरह का रूहानी और तारीख़ी माहौल पैदा हो गया है। यही वजह है कि जो शख़्स भी वहां जाता है वह गहरा असर लिए बिना नहीं रहता। आदमी हज अदा करने के बाद इस तरह लौटता है जैसे कोई गर्दो ग़ुबार (धूल-मिट्टी) में लिपटा हुआ आदमी दरिया में नहा कर वापस आया हो।

हज को इस्लामी इबादात में एक असाधारण अहमियत हासिल है। एक हदीस में इसको अफ़ज़ल इबादत कहा गया है। लेकिन हज की यह ख़ास अहमियत अपनी रूह के एतिबार से है, न कि सिर्फ़ अपने ज़ाहिर के एतिबार से। दूसरे लफ़्ज़ों में यह कि सिर्फ़ हरम के इलाक़े में जाकर वापस आ जाने का नाम हज नहीं है बल्कि दिल की उन हालातों को पा लेने का नाम हज है जिनके लिए यह फ़रीज़ा (ज़िम्मेदारी) रखा गया है। हज के अफ़ज़ल इबादत होने का मतलब यह है कि जो शख़्स हज को उसकी सच्ची रूह और सही आदाब के साथ अदा करे उसके लिए हज उसकी सबसे बड़ी इबादत बन जाएगा।

# हज सबसे श्रेष्ठ इबादत

हज अल्लाह ताला से मुलाक़ात है। जब आदमी सफ़र करके हज की जगहों तक पहुँचता है, तो उस पर एक ख़ास तरह की रब्बानी हालतें छा जाती हैं। उसे ऐसा महसूस होता है जैसे वह अपनी दुनिया से निकलकर खुदा की दुनिया में आ गया हो। वह अपने रब को छू रहा है, उसके चारों ओर घूम रहा है, उसकी तरफ़ बढ़ रहा है, उसी की ख़ातिर सफ़र कर रहा है। वह उसके सामने अपनी कुर्बानी पेश कर रहा है, उसके दुश्मन पर कंकर मार रहा है, उससे वही मांग रहा है जो उससे मांगना चाहिए, और उससे वही पा रहा है जो उसे पाना चाहिए।

काबा ज़मीन पर खुदा की बड़ी निशानियों में से एक निशानी है। वहाँ भटकी हुई इंसानी रूहों को खुदा की गोद मिलती है। वहाँ पत्थराए हुए दिलों में बंदगी के सोते फूट पड़ते हैं। वहाँ रौशनी से ख़ाली आँखों को ख़ुदा की झलक दिखाई देती है। लेकिन यह सब उसी शख़्स के लिए है जो अपने अंदर तैयारी लेकर वहाँ जाए। जो लोग बिना तैयारी के जाते हैं, उनके लिए हज बस एक तरह की सैर बनकर रह जाता है। वे वहाँ जाते तो हैं, लेकिन जैसे गए थे वैसे ही लौट आते हैं।

हदीस में कहा गया है: अरफ़ात के मैदान में ठहरना ही हज है।: (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस संख्या 889)। इससे अरफ़ात की अहमियत साफ़ पता चलती है। हज के दिनों में अरफ़ात का मैदान मानो हश्र के मैदान का मंज़र बन जाता है। एक तय दिन पर ख़ुदा के बंदे लगातार क़फिलों में चारों ओर से आते हुए दिखाई देते हैं। यह मंज़र बहुत ही अजीब होता है। सभी लोगों के जिस्म पर एक ही सादा कपड़ा (एहराम) होता है। हर शख़्स अपनी अलग पहचान छोड़ देता है। सबकी ज़ुबान पर एक ही कलिमा जारी है—

*लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक, लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक*

لَبَّيْك اللَّهُمَّ لَبَّيْك، لَبَّيْك اللَّهُمَّ لَبَّيْك

यह मंज़र देखकर इंसान को क़ुरआन की वह आयत याद आ जाती है जिसमें कहा गया है कि क़यामत के दिन जब सूर फूंका जाएगा, तो सभी लोग अपनी क़ब्रों से निकलकर अपने रब की तरफ़ दौड़ पड़ेंगे: "और सूर फूंका जाएगा तो सब लोग अचानक कब्रों से अपने रब की तरफ़ चल पड़ेंगे।" (36:51)

अरफ़ात की यह हाज़िरी इस लिए है कि आदमी क़यामत में खुदा के सामने अपनी हाज़िरी को याद करे। जो कुछ कल हक़ीक़त में होने वाला है, उसे आज ही कल्पना के रूप में अपने ऊपर महसूस कर ले।

हक़ीक़त यह है कि हज को तमाम इबादतों में सबसे प्रमुख इबादत माना गया है। काबा का जो दर्जा दूसरी मस्जिदों के बीच है, वही दर्जा हज का दूसरी इबादतों के बीच है।

## हज का पैग़ाम

हज क्या है? सीधी भाषा में समझें तो यह अल्लाह के लिए किया गया एक सफ़र है। इंसान अपना समय और अपना पैसा लगाकर उन मुक़द्दस जगहों तक पहुँचता है, जहाँ अल्लाह की यादें बसी हैं और जहाँ उसके सच्चे बंदों की यादगारें मौजूद हैं।

हज का हर कार्य इस बात को दिखाता है कि इंसान सच में अल्लाह के लिए जी रहा है। उसकी पूरी ज़िंदगी अल्लाह के इर्द-गिर्द घूमती है। वह अल्लाह के नेक बंदों से मोहब्बत करता है और बुराई से दूर रहता है।

हज करने वाला इंसान जैसे अभी से उस दिन को महसूस करने लगता है, जब उसे अल्लाह के सामने हाज़िर होना है। वह सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरने वाला और उसे याद करने वाला बन जाता है। उसके दिल में यह बेचैनी पैदा होती है

कि इस्लाम का पैग़ाम पूरी दुनिया तक पहुँचे और एक सच्चाई के रूप में लोगों के सामने आए।

हज बाहर से देखने पर तो एक वक़्ती इबादत लगता है, लेकिन असल में यह एक सच्चे ईमान वाले इंसान की पूरी ज़िंदगी की तस्वीर है। यह आख़िरी सांस तक अल्लाह की बंदगी में जीने का एक तरह का वादा है।

इंसान इसलिए जीता है कि वह अपने रब के लिए हज करे, और हज इसलिए करता है कि उसकी पूरी ज़िंदगी अपने रब के लिए हो जाए। इस तरह हज सिर्फ़ एक अमल नहीं, बल्कि वह एक ईमान वाले की ज़िंदगी की भी व्याख्या है और उसकी मौत की व्याख्या भी।

हज मानो अल्लाह तआला से मुलाक़ात जैसा एहसास है। यह दुनिया की ज़िंदगी में अपने रब के सबसे क़रीब होने की आख़िरी हालत है। अगर दूसरी इबादतें अल्लाह की याद दिलाती हैं, तो हज ऐसा लगता है जैसे इंसान खुद अल्लाह की तरफ़ पहुँच गया हो।

हज की यह ख़ासियत इस लिए है कि वह ऐसे स्थान पर किया जाता है जिसे अल्लाह ने बरकत वाला और मार्गदर्शन का ज़रिया बनाया है (आले इमरान, 3:96)। हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने कई खुदाओं को सहारा बनाने के बजाय सिर्फ़ एक ही ख़ुदा को अपना सहारा बनाया। इसी मक़सद से उन्होंने बैतुल्लाह (काबा) की तामीर की, जो तौहीद यानी एक ईश्वर की इबादत का आलमी मर्कज़ (वैश्विक केंद्र) है।

तौहीद का यही केंद्र हज की तमाम रस्मों का भी केंद्र है। यहाँ इस्लाम की पूरी

तारीख़ जैसे ज़िंदा हो उठती है। इसके आसपास उन आदर्श सहाबा की यादें बसी हुई हैं, जिन्होंने पैग़म्बर इस्लाम (सल्ल०) की रहनुमाई में पहली बार अल्लाह के दीन को एक हक़ीक़ी और ऐतिहासिक रूप दिया।

रब्बानी कोशिशों की इस तारीख़ के सबब "मक्का ज़मीन पर अल्लाह का सबसे महबूब और सबसे बेहतरीन मक़ाम है" (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 18715) इन घटनाओं की वजह से वहाँ इस्लाम के हक़ में एक खास तरह का ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक माहौल बन गया है। जो भी व्यक्ति वहाँ जाता है, वह बिना असर लिए नहीं लौटता। अगर कोई हाजी खुले और तैयार दिल के साथ जाए, तो हज के ज़रिए वह ऐसी रूहानी ख़ुराक लेकर लौटता है, जो उसकी पूरी ज़िंदगी के लिए दीनी ऊर्जा का स्रोत बन जाती है।

हज को इस्लामी इबादतों में हमेशा एक खास और अहम जगह मिली है। इसमें बाकी तमाम इबादतों का निचोड़ भी शामिल है और यह उनमें नई रूह भर देता है। हज़रत इब्राहीम के ज़रिए जो अज़ीम रब्बानी मंसूबा शुरू हुआ था, हज की इबादत मानो उसी का एक अभ्यास है। हालांकि इसकी जो कुछ अहमियत है, वह इसकी असल रूह के एतबार से है, न कि सिर्फ़ ज़ाहिरी रस्मों और तरीक़ों के एतबार से। दूसरे लफ़्ज़ों में, हज सिर्फ़ इसका नाम नहीं है कि आदमी हरम की मुक़द्दस जगहें में जाए और कुछ तय रस्मों को दोहरा कर वापस लौट आए। बल्कि हज उन हालतों को हासिल करने का नाम है जिनके लिए ये मरासिम (हज के ज़रूरी फराइज़) तय किए गए हैं। खाना बेशक आदमी को ताक़त देता है, मगर खाना उसी शख़्स के लिए ताक़त का ज़रिया है जो उसे सही तरीक़े से अपने पेट में डाले। अगर कोई शख़्स उसे सिर्फ़ देखे या अपने सिर पर उलट ले, तो उसके लिए सबसे क़ीमती खाना भी बिल्कुल बेफ़ायदा साबित होगा। इसी तरह हज का

असल फ़ायदा भी उसी शख़्स को मिलेगा जो हज को वैसे करे जैसा कि उसे करना चाहिए। हज की हक़ीक़त के बारे में क़ुरआन में आया है:

> "हज के मुतय्यन महीने हैं। तो जिसने हज का इरादा कर लिया तो फिर उसे हज के दौरान न कोई बेहयाई की बात करनी चाहिए और न गुनाह की और न लड़ाई-झगड़े की। और जो भला काम तुम करोगे अल्लाह उसे जान लेगा। और तुम ज़ादेराह (provision for travel) लो। बेहतरीन ज़ादेराह तक़्वा (अल्लाह का डर) है। और ऐ अक़्ल वालो! मुझ से डरो।" (2:197)

**रफ़स** का मतलब है बेहयाई या अश्लील बातें करना। **फ़िस्क़** का मतलब है गुनाह करना—यानी ऐसे काम करना जो शराफ़त और इंसानियत के ख़िलाफ़ हों; जैसे कहते हैं, "उसने इंसानियत का लिबास उतार फेंका।" और **जिदाल** का मतलब है आपस में झगड़ा करना।

ये तीनों बातें ज़्यादातर ज़ुबान से जुड़ी हुई बुराइयाँ हैं। जब अलग-अलग तरह के लोग एक जगह इकट्ठा होते हैं, तो कभी कोई व्यक्ति हल्की या बेहूदा बातें करके माहौल बिगाड़ देता है। कभी कोई बात मन के ख़िलाफ़ हो जाए तो इंसान अपना सब्र खोकर बदज़ुबानी करने लगता है। और कभी किसी से तकलीफ़ पहुँच जाए तो वह सहन नहीं कर पाता और लड़ाई-झगड़े पर उतर आता है।

हज का यह इज्तिमा दरअसल इन तमाम बुराइयों से बचने की एक ट्रेनिंग है। इंसान को ऐसी जगह ले जाया जाता है, जो पवित्रता और सम्मान की यादों से जुड़ी होती है, ताकि वह खास तौर पर यह सीख सके कि लोगों के बीच रहते हुए इन बुराइयों से कैसे बचे।

वह अपने आपको बेहयाई और नीचता से हटाकर संजीदा और अच्छी बातों की तरफ़ लगाए। उसके अंदर हर हाल में सच और भलाई पर टिके रहने की आदत बने। और अगर इज्तिमाई ज़िंदगी में कोई नापसंद बात हो जाए या दिल को ठेस पहुँचे, तब भी वह अपने भाई से झगड़ने के बजाय सब्र और समझदारी से काम ले।

जब भी कुछ लोग कहीं इकट्ठा होते हैं या साथ रहते हैं, तो एक को दूसरे से कोई न कोई शिकायत हो ही जाती है। यही हालत हज में और बड़े पैमाने पर सामने आती है, क्योंकि हज के मौक़े पर अलग-अलग तरह के लोग बहुत बड़ी संख्या में एक जगह जमा हो जाते हैं। नतीजा यह होता है कि हज के दौरान बार-बार एक को दूसरे से तकलीफ़ पहुँचती है। अब अगर लोग अपनी निजी शिकायतों की वजह से एक-दूसरे से लड़ने लगें, तो इबादत का माहौल खत्म हो जाएगा और हज का मक़सद पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिए हज के समय झगड़ने और गुस्सा करने से पूरी तरह मना कर दिया गया है। इस तरह हज को एक बहुत बड़ी चीज़ के लिए ट्रेनिंग का माध्यम बनाया गया है। क्योंकि लड़ाई-झगड़ा जिस तरह हज को बेअसर कर देता है, उसी तरह वह एक मुसलमान की आम ज़िंदगी को भी इस्लाम से दूर कर देने वाला बन जाता है।

अक्सर ऐसा होता है कि आदमी किसी ज़ाहिरी चीज़ को तक़वा की निशानी समझ लेता है और उसे अपनाकर समझता है कि उसने परहेज़गार जीवन पा लिया। जबकि असल हक़ीक़त के एतबार से उसका दिल तक़वा से बिल्कुल खाली होता है। कुछ लोगों ने यह समझ लिया कि हज के सफ़र में सामान साथ न रखना तक़वा की निशानी है, इसलिए वे इस पर खास तौर पर अमल करने लगे। जबकि हक़ीक़त यह है कि सफ़र का सामान रखना ज़रूरत से जुड़ा है, तक़वा से नहीं।

इस क़िस्म की चीज़ों में आदमी को अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ तैयारी करनी चाहिए। मगर तक़वा इससे बिल्कुल अलग चीज़ है। इसका तअल्लुक़ दिल से है (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 2564)। अल्लाह के यहाँ कोई इंसान सिर्फ़ इस वजह से क़बूल नहीं हो जाता कि उसने बिना वजह सामान के बग़ैर सफ़र किया और अपने शरीर को बेकार की तकलीफ़ दी। अल्लाह को तो दिल का तक़वा चाहिए। हज का सफ़र दरअसल तक़वा हासिल करने का ज़रिया होना चाहिए, क्योंकि यही असली ज़ाद-ए-सफ़र है जो आख़िरत के सफ़र में काम आएगा। हज के मुसाफ़िर के लिए—और इसी तरह ज़िंदगी के हर मुसाफ़िर के लिए—सबसे बड़ी समझदारी यही है कि वह शहवत (वासना) की बातों से बचे, अल्लाह को नापसंद आने वाले कामों से दूर रहे, और झगड़ा-फसाद से अपने आप को बचाकर रखे।

## रसूलुल्लाह (सल्ल०) का हज

हज की इबादत का निज़ाम हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने क़ायम किया था। इसके बाद हालांकि इस निज़ाम में कई तरह के बिगाड़ आ गए, फिर भी इसका रिवाज लगातार बाक़ी रहा। रसूलुल्लाह (सल्ल०) जब मक्का में पैदा हुए, उस वक़्त हज में जाहिली रस्मों के मिल जाने के बावजूद वह पूरी तरह जारी था।

हिजरत के बाद रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने सिर्फ़ एक बार हज अदा किया, जिसे आम तौर पर हज्जतुल विदा कहा जाता है।

## एक सबक़

हज्जतुल विदा को रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने जिस अंदाज़ में अदा किया, उसमें हमारे लिए कई अहम सबक छिपे हुए हैं। उनमें से एक यह है कि सामूहिक ज़िंदगी अक्सर रिवायतों (परंपराओं) के सहारे चलती है। इन्हें अचानक तोड़ देना ऐसे नुकसान का कारण बन सकता है, जिसकी भरपाई आसान नहीं होती। इसलिए सामूहिक जीवन में जो भी काम किया जाए, वह रिवायतों का ख्याल रखते हुए किया जाए। रिवायतों को तोड़कर काम करना पैग़म्बरी तरीक़े के मुताबिक़ नहीं है।

## हज्जे-विदा के ख़ुतबे का संदेश

हज्जतुल विदा का खुत्बा रसूलुल्लाह (सल्ल०) की आख़िरी और सबसे अहम तक़रीर है। यह वह खुत्बा है जो आपने 9 ज़िलहिज्जा 10 हिजरी को मैदाने अरफ़ात में दिया था। हज्जतुल विदा मानो नुबूवत के दौर का सबसे बड़ा इस्लामी सम्मेलन था। इस मौक़े पर लगभग सवा लाख सहाबी मौजूद थे। उस समय अपनी वफ़ात से लगभग दो महीने पहले यह खुत्बा दिया। इसमें आपने उन सभी बातों का आख़िरी ऐलान किया जिनके लिए अल्लाह की तरफ़ से आपको भेजा गया था।

यह खुत्बा एक शब्द में अल्लाह की महानता और इंसानों की समानता का ऐलान था। आपने बताया कि इंसानों के बीच असली फ़र्क़ सिर्फ़ एक है और वह यह है कि कौन अल्लाह को मानने वाला है और कौन नहीं। इसके अलावा बाक़ी सभी फ़र्क़ बनावटी हैं। आपने दूसरे फ़र्क़ को ग़लत ठहराया और ईमान वालों को ज़िम्मेदारी दी कि वह हमेशा इसका ऐलान करते रहें।

इस पूरे खुत्बे का ख़ुलासा इस जुमले में है: “ख़बरदार ज़ुल्म न करना, ख़बरदार ज़ुल्म न करना।” इस खुत्बे का मक़सद हर तरह के ज़ुल्म का रास्ता बंद करना है, चाहे वह अंधविश्वास की वजह से पैदा हुआ हो या ग़लत क़ानूनों की वजह से, या घमंड और सरकशी की वजह से।

इस मक़सद के लिए यह एलान कर दिया गया कि उसूली तौर से हर शख़्स का खून, उसका माल और उसकी इज़्ज़त दूसरे के लिए हराम है, सिवाय इसके कि अल्लाह के वाज़ेह कानून के आधार पर उसका कोई उचित कारण हो। अज्ञानता के समय की परंपराओं और बदले की भावनाओं के तहत जो कार्य एक दूसरे के ख़िलाफ़ किए जाते थे, उन्हें पूरी तरह ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे दिया गया।

सूदी लेन-देन को बिल्कुल हराम ठहरा दिया गया जो कि समाज के विभिन्न तबक़ों के बीच आर्थिक ज़ुल्म पैदा करता है। इसी के साथ बिल्वास्ता (अप्रत्यक्ष) तरीक़ों से सामाजिक इंसाफ़ में ज़बरदस्त रुकावट है। औरतों के हक़ स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिए गए हैं। और मर्दों को इससे रोक दिया गया कि वे औरत को कमज़ोर पाकर उन्हें अपनी ज़्यादती का निशाना बनाएं।

इंसानों के बीच आपसी मामलों के लिए ख़ुदा की किताब और रसूल की सुन्नत को आख़िरी मेयार (मानक) ठहरा दिया गया। लोगों को पाबंद किया गया कि वे अपने हर विवाद का फ़ैसला क़ुरआन और सुन्नत की हिदायतों के अनुसार करें—चाहे वह फ़ैसला उनकी इच्छा के मुताबिक़ हो या उसके ख़िलाफ़।

मुसलमानों को उनकी गुमराही के सबसे बड़े कारण—आपसी झगड़ों—से बचने की ताकीद की गई। अल्लाह ने दीन को इतना महफ़ूज़ और मज़बूत बना दिया है

कि अब उसमें बिगाड़ के लिए शैतान सीधा रास्ता नहीं पा सकता। लेकिन वह अलग-अलग बहानों और बेबुनियाद विवाद खड़े करके मुसलमानों को आपस में उलझाने की कोशिश करेगा। अगर मुसलमान इस फ़ितने से बच गए, तो फिर कोई दूसरी चीज़ उन्हें नुकसान नहीं पहुँचा सकती।

ईमान का तक़ाज़ा यह है कि मुसलमान के अंदर अमानत निभाने का गहरा एहसास पैदा हो। अल्लाह के दीन का पैग़ाम दूसरों तक पहुँचाना भी अमानत की अदायगी है। लोगों की अमानत (माल) उन्हें लौटाना भी उसी का हिस्सा है। इसी तरह, किसी लायक़ व्यक्ति की क़ाबिलियत को मानकर उसके लिए जगह छोड़ देना भी अमानतदारी है। मुसलमान को हर मामले में इस बात का पाबंद बनाया गया है कि वह अमानत को पूरी ईमानदारी और ज़िम्मेदारी के साथ अदा करे।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) का यह ख़ुत्बा मानो एक ज़िंदा पुकार है। वही हाजी हक़ीकी मायनों में हाजी है जो हज के दौरान इस पुकार को सुने और वहाँ से इस हाल में लौटे कि यह ख़ुत्बा उसकी पूरी ज़िंदगी की कार्य-योजना बन गया हो।

## हज से मुतअल्लिक़ कुछ अहम बातें

अक्सर हाजियों को देखा गया है कि हज के अरकान (ज़रूरी फरायेज़) को अदा करते हुए वे बस रटी हुई दुआएँ दोहराते रहते हैं या किताब हाथ में लेकर उससे पढ़ते रहते हैं। भले ही इससे हज की फिक़ही (औपचारिक) अदायगी हो जाती है, मगर हज के दौरान ज़िक्र और दुआ से जो असल चीज़ हासिल करनी होती है, इस तरह करने से उसका हक़ अदा नहीं होता। हज के दौरान आदमी पर वही

हालत गुज़रनी चाहिए जो हज़रत इब्राहीम और उनके ख़ानदान पर गुज़री थी। मिसाल के तौर पर, जब आदमी सई (सफ़ा और मरवा के बीच दौड़) करता है तो उसकी ज़ुबान से ऐसे अल्फ़ाज़ निकलने चाहिए कि—खुदाया, तूने इस सई के बाद हज़रत हाजरा के लिए बरकत का हमेशा रहने वाला चश्मा जारी कर दिया था, मेरी सई को भी तू ऐसी सई बना दे कि जिसके बाद मेरे लिए भलाई के ऐसे चश्मे जारी हो जाएँ जो दुनिया से आख़िरत तक मुझे सैराब (तृप्त) करते रहें।

आजकल हाजियों में लगभग 95 प्रतिशत तादाद ज़्यादा उम्र वालों की होती है। इनमें बहुत से ऐसे होते हैं जो बहुत बूढ़े हो चुके होते हैं, यहाँ तक कि हज के मनासिक (हज के ज़रूरी काम) को अदा करना उनके लिए मुश्किल हो जाता है। इस तरह के लोगों के लिए बेहतर है कि वे अपना हज्जे बदल कराएँ। हज्जे बदल (किसी दूसरे की तरफ़ से हज अदा करना) जो आजकल आम तौर पर मृत व्यक्ति के लिए किया जाता है, असल में ऐसे ही लोगों के लिए है। हदीस में आया है:

> "फ़ज़्ल बिन अब्बास कहते हैं कि हज्जतुल विदा के साल बनू ख़सअम की एक औरत ने रसूलुल्लाह (सल्ल०) से कहा कि हज बंदों पर अल्लाह का फ़रीज़ा है। मेरा एक बूढ़ा बाप है, वह सवारी पर नहीं बैठ सकता। क्या मैं उनकी तरफ़ से हज करूँ? आपने फ़रमाया—हाँ। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या1854)।

हज हर उस शख़्स पर, जो इसकी ताक़त रखता हो, ज़िंदगी में एक बार फ़र्ज़ है। हदीस में आया है कि हज्जे मबरूर का बदला सिर्फ़ जन्नत है। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1773; *सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1349)।

## हज्जे मबरूर

हज्जे मबरूर को अक्सर लोग हज्जे मक़बूल के समान अर्थ में समझते हैं। जबकि इसका मतलब यह है कि "ऐसा हज जिसमें कोई गुनाह शामिल न हो" (*शरह नववी*, खंड 9, पृष्ठ 118-119)

हसन बसरी ताबिई ने कहा है कि, "हज्जे मबरूर वह है जिससे आदमी इस तरह लौटे कि उस के अंदर से दुनिया की चाहत निकल जाए और आख़िरत की चाहत उसके अंदर पैदा हो जाए" (*अत-तारीख अल-कबीर*, अल-बुख़ारी, खण्ड 4, पृष्ठ 99)

हक़ीक़त में, अगर हज सही समझ और भावना के साथ किया जाए, तो न केवल हज के दौरान आदमी गुनाहों से बचा रहेगा, बल्कि वह इस तरह लौटेगा कि हर बुराई से उसका दिल हट चुका होगा और हर भलाई में उसकी दिलचस्पी पैदा हो चुकी होगी।

## ग़ौर करने की बातें

एक रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाजी अल्लाह की निगरानी में रहता है, हज पर जाते वक़्त भी और हज से लौटने के बाद भी।" (*अल-फ़िरदौस बिमासूरिल-ख़िताब*, हदीस संख्या 2761)।

हाजी के बारे में यह बात किसी पुरअस्रार माना (रहस्यमय अर्थ) में नहीं है, बल्कि एक मालूम नफ़्सियाती (मनोवैज्ञानिक) माना में है। हज के साथ अल्लाह तआला ने ऐसे ख़ास मामले रखे हैं कि जैसे ही कोई उसको करता है, उसके अंदर

अल्लाह की याद आने लगती है और उसकी ओर ख़ास झुकाव पैदा हो जाता है। जैसे किसी शख़्स को न्यूयॉर्क की यात्रा करनी हो, तो "न्यूयॉर्क" से मुतअल्लिक़ उसकी मानसिकता बनने लगती है, और लौटने के बाद भी उस पर "न्यूयॉर्क" का असर छाया रहता है। इसी तरह जो शख़्स हज का सफ़र करता है, वह वहां जाने से पहले और वहां से लौटने के बाद अपने अंदर एक ख़ास क़िस्म की रब्बानी नफ़्सियात (मानसिकता) महसूस करता है।

लेकिन हज का यह फ़ायदा कोई मशीनी अंदाज़ का नहीं है, जो अपने आप हर हाजी को मिल जाए। इसके लिए ज़रूरी है कि हाजी के अंदर उसके मुताबिक़ सलाहियत मौजूद हो। इस तरह के सभी फ़ायदे हमेशा आदमी की अपनी सलाहियत की बुनियाद पर होते हैं। अगर सलाहियत मौजूद हो तो फ़ायदा मिलेगा, और सलाहियत न हो तो फ़ायदों के चश्मों (स्रोतों) के दरमियान रहते हुए भी आदमी फ़ायदे से महरूम रह जाएगा।

हज़रत अनस बिन मालिक की एक रिवायत इन लफ़्ज़ों में आई है:

> "लोगों पर एक ऐसा समय आएगा जब मेरी उम्मत के अमीर लोग सैर-सपाटे के लिए हज करेंगे, बीच के लोग तिजारत के लिए हज करेंगे, उनके पढ़े-लिखे लोग दिखावे और नाम के लिए हज करेंगे, और ग़रीब लोग भीख मांगने के लिए हज करेंगे।" (*तारीख़ बग़दाद*, हदीस संख्या 5386)।

हज़रत अनस की यह रिवायत बहुत डरा देने वाली है। इस की रोशनी में मौजूदा ज़माना के मुसलमानों को ख़ास तौर पर अपना एहतिसाब (introspection) करना चाहिए। उन्हें ग़ौर करना चाहिए कि उनका हज इस रिवायत का प्रमाण तो

नहीं बन गया है। मालदार हज़रात सोचें कि उनके हज में तक़वा की रूह है या सैर व तफ़रीह की रूह। आम लोग यह सोचें कि वह दीनी फ़ायदे के लिए हज करने जाते हैं या तिजारती फ़ायदे के लिए। उलमा ग़ौर करें कि वह बंदगी का सबक़ लेने के लिए बैतुल्लाह जाते हैं या लोगों में अपनी झूटी दीनी फ़ज़ीलत क़ायम करने के लिए। इसी तरह ग़रीब लोग सोचें कि हज को उन्होंने ख़ुदा से माँगने का ज़रिया बनाया है या इंसानों से माँगने का ज़रिया।

## हज एक तारीख़ साज़ (इतिहास बनाने वाला) अमल

हज की फ़ज़ीलत का एक ख़ास पहलू यह है कि हज का तअल्लुक़ एक अज़ीम ख़ुदाई मंसूबे से है। हज एक ऐसे ख़ुदाई मंसूबे की यादगार है जिसकी शुरुआत हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के ज़माने में हुई और मुहम्मद (सल्ल०) के ज़माने में उसकी आख़िरी तकमील (completion) हुई।

हज के अलग-अलग मरासिम (विधियाँ) उसी खुदाई मंसूबे के मुख्तलिफ़ मरहले हैं जिनको हाजी अलामती (प्रतीकात्मक) तौर पर दोहराता है। हाजी अपने घर से निकलकर हिजाज़ (मक्का का इलाक़ा) के लिए रवाना होता है जिस तरह हज़रत इब्राहीम इराक़ से निकलकर हिजाज़ आए। वह मक्का के क़रीब पहुँचकर सिले हुए कपड़े उतार देता है और अपने जिस्म पर दो चादरें लपेट लेता है। यह उसी क़िस्म की सादा पोशाक है जो उस ज़माना में हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल की होती थी। हाजी मक्का पहुँचता है तो काबा के गिर्द चक्कर लगाता है। यह वही तवाफ़ है जो हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने खुदाई अह्द की तौसीक़ (पुष्टि) के लिए किया था। हाजी सफ़ा व मरवा के दरमियान सात बार

सई करता है। यह हज़रत हाजरा की उस दौड़ की नक़ल है जो उन्होंने उस बंजर इलाक़े में पानी की तलाश के लिए की। हाजी मिना जाकर क़ुर्बानी करता है, यह उस क़ुर्बानी का अलामती इआदा (प्रतीकात्मक दोहराव) है जो हज़रत इब्राहीम ने पहले बेटे के लिए और उसके बाद ख़ुदा के हुक्म से मेंढ़े के लिए की थी। हाजी जमरात पर जाकर शैतान को कंकरियाँ मारता है। यह उस अमल की यादगार है जो हज़रत इब्राहीम ने शैतान की तरफ़ कंकरियाँ मारकर किया था जब कि उसने उन्हें बहकाने की कोशिश की। फिर तमाम हाजी अरफ़ात के मैदान में जमा होते हैं। यह उस अमल की आख़िरी सूरत है जो लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक की सूरत में हर हाजी की ज़ुबान से अदा होता है। यहाँ तमाम हाजी खुले मैदान में जमा होकर अपने अल्लाह से इज्तिमाई अहद (सामूहिक संकल्प) करते हैं कि वह वही करेंगे जिसका सबक़ उन्हें हज की सूरत में दिया गया है। वह उसी में जिएँगे जिसमें वह लोग जिए जिनकी यादगार में हज की इबादत अदा की जाती है।

हज के मनासिक (विधियों) को क़ुरआन में शआइर कहा गया है (5:2), यानी अलामती चीज़ें। यह सब दरअसल हज़रत इब्राहीम और उनके परिवार पर गुज़रने वाले वाक़िआत (घटनाएँ) हैं, जो ख़ुदाई मंसूबे की तकमील (completion) के दौरान पेश आए। इन वाक़िआत को हाजी अलामती तौर पर दोहराता है और इस तरह यह अहद करता है कि वह भी उसी तारीख़ का हिस्सा बनेगा।

हाजी मानो यह अहद करता है कि अगर ज़रूरत पेश आई तो वह अपनी दुनिया को उजाड़कर हक़ की तरफ़ बढ़ेगा। वह आराम व राहत को छोड़कर संतोष और सादगी पर अपने आप को राज़ी करेगा। वह अल्लाह के लिए दौड़ेगा और अल्लाह के इर्द-गिर्द घूमेगा। वह शैतानी बहकावे को "पत्थर मार कर" अपने से दूर भगाएगा। अल्लाह का दीन उसको जहाँ ले जाएगा वह वहाँ जाएगा। और

जिस चीज़ का तक़ाज़ा करेगा उसको वह उसके हवाले कर देगा। वह अमल की ज़ुबान में अल्लाह से कहता है कि अगर दुबारा दीन के लिए ज़रूरत पेश आई तो वह उस आख़िरी हद तक जाने के लिए तैयार है कि अपनी औलाद को कुर्बान करके दीन की ज़रूरत पूरी करे।

हज़रत इब्राहीम का इराक़ से चलकर मक्का आना और यहाँ इन घटनाओं का होना एक बहुत बड़ा ख़ुदाई मंसूबा था, जो ढाई हज़ार साल में पूरा हुआ। इसका मतलब यह है कि क़रीब पाँच हज़ार साल पहले इंसानों के ज़ेहन पर शिर्क (बहुदेववाद) इतना छा गया था कि ज़िंदगी का कोई हिस्सा उससे खाली नहीं था। यह हालत पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रही। नतीजा यह हुआ कि इंसानी नस्लों में शिर्क एक पक्का चलन बन गया। उस समय जो भी इंसान पैदा होता, वह शिर्क वाला ज़ेहन लेकर ही पैदा होता और उसी माहौल में उसकी पूरी परवरिश होती। इसी वजह से पैग़म्बरों की तौहीद की दावत लोगों के दिल को किसी तरह अपील नहीं करती थी।

आज का ज़माना घूमकर फिर उसी हालत में आ गया है, जहाँ वह हज़रत इब्राहीम के दौर में था। उस वक़्त पूरी दुनिया पर शिर्क का असर था, और आज पूरी दुनिया पर इल्हाद (नास्तिकता) का असर है। पहले के लोग बहुदेववादी सोच के साथ जीते थे, और आज का इंसान नास्तिक सोच के साथ जीता है।असल बात यह है कि आज का मसला वही है जो पहले था—बस फ़र्क़ इतना है कि पहले लोगों पर मुशरिकाना सोच हावी थी, और आज लोगों पर नास्तिक सोच हावी है। इस ज़ेहनी ढाँचे को तोड़ना ही आज इस्लाम का असली काम है। आज भी इस्लामी मुहिम उसी तरीक़े से आगे बढ़ेगी, जिस तरीक़े से पुराने ज़माने में बढ़ी थी।

अब फिर कुछ लोगों को बड़े मकसद के लिए त्याग और समर्पण का रास्ता अपनाना होगा। अब फिर कुछ लोगों को अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए मुश्किल हालात में भी धैर्य, हिम्मत और अच्छे आचरण की मिसाल बनना होगा, ताकि जीवन की अच्छी परंपराएँ फिर से ज़िंदा हो सकें। पहले भी सत्य और नैतिकता को कायम करने के लिए एक पीढ़ी को बड़ा त्याग करना पड़ा था। आज नास्तिक सोच और नैतिक गिरावट के इस दौर में फिर ऐसी पीढ़ी की ज़रूरत है, जो अपने जीवन को ऊँचे मूल्यों के लिए समर्पित करे। यही हज का सबसे बड़ा संदेश है। आज सच्चा और सार्थक हज उसी का है, जो हज के बाद यह संकल्प लेकर वापस आए कि वह अपनी ज़िंदगी को शांति, नैतिकता, धैर्य और इंसानियत की भलाई के लिए समर्पित करेगा।

हक़ीक़त यह है कि हज से फ़ारिग़ होने के बाद हाजी का काम ख़त्म नहीं हो जाता, हज से फ़ारिग़ होने के बाद हाजी का असल काम शुरू होता है। हज के सफ़र से वापसी एक नए और ज़्यादा अहम सफ़र की शरुआत है।

हाजी हज की रस्मों के दौरान बार-बार लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक (हाज़िर हूँ, ऐ अल्लाह, मैं हाज़िर हूँ) कहता है। यह अहद-नामे (प्रतिज्ञा-पत्र) के अल्फ़ाज़ हैं। हज ख़ुदा और बंदे के बीच एक अहद है। अहद हमेशा आग़ाज़ (आरंभ) होता है, वह इख़्तिताम (समापन) नहीं होता। यही हज की इबादत का मामला है। जो शख़्स हज की रस्मों को अदा करके वापस आता है, वह जैसे ख़ुदा से एक पवित्र अहद (प्रतिज्ञा) करके वापस आता है। वापस आने के बाद उसे मुतमइन होकर बैठ नहीं जाना है, बल्कि अपने हालात और सलाहियत के एतबार से वह काम शुरू कर देना है, जिसका वह अपने रब से अहद करके वापस आया है।

हज से लौटना मक़ाम-ए-अहद (प्रतिज्ञा स्थल) से निकलकर मक़ाम-ए-अमल (कर्म स्थल) की तरफ़ लौटना है। हज के बाद आदमी की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं, हज के बाद आदमी की ज़िम्मेदारियाँ खत्म नहीं होतीं।

हज का अहद-नामा क्या है। यह एक तारीख़ को दोहराने का संकल्प है। हज तारीख़-ए-इब्राहीमी को दोबारा लाने का इकरार है। हज़रत इब्राहीम ने जब देखा कि इराक़ के सभ्य लोग तौहीद और आख़िरत की बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, तो उन्होंने अपने अमल का एक नया नक्शा बनाया। उन्होंने अपने आप को और अपनी औलाद को क़ुर्बानी के कड़े मरहले से गुज़ारकर एक नई ज़िंदा नस्ल पैदा की। उन्होंने दीन का पैग़ाम लोगों तक पहुँचाने को अपने लिए एक बड़ा और ऊंचा मक़सद बना लिया। इसके लिए उन्होंने वह सब कुछ किया, जिसका यह मक़सद उनसे मुतालबा कर रहा था।

हज़रत इब्राहीम के दौर में जिस तरह शिर्क का पूरी दुनिया पर ग़लबा (वर्चस्व) था, उसी तरह आज इल्हाद (नास्तिकता) का ग़लबा है। अब जो लोग हज से लौटें, उनका काम यह होना चाहिए कि इस नास्तिकता के असर को खत्म करने और तौहीद का दौर फिर से लाने के लिए वे शांतिपूर्ण इब्राहीमी सुन्नत को ज़िंदा करें। वे इब्राहीमी मिशन को दोबारा ज़िंदा करें और इस मक़सद के लिए हालात जो भी उनसे मांग करें, उसमें अपना पूरा योगदान दें। वे प्रतीकात्मक क़ुर्बानी को अपनी असल ज़िंदगी में सच्ची क़ुर्बानी से बदल दें।

हज एक तारीख़ के दोहराव का संकल्प है। हज के दिनों में आलामती रस्मों की सूरत में और हज के बाद हक़ीक़ी ज़िंदगी में योजनाबद्ध कार्य की सूरत में।

## हज इत्तिहाद का ज़रिया

मौजूदा दौर में मुसलमानों का सबसे बड़ा मसला आपसी मतभेद और बिखराव है। सवाल यह है कि हज जैसा अनोखा सामूहिक इदारा होते हुए भी उनके अंदर इत्तिहाद क्यों नहीं बन पाता। जबकि हज, अपने सालाना आलमी इज्तिमा के साथ, पूरी दुनिया के मुसलमानों के लिए ऐसा मज़बूत ज़रिया होना चाहिए जहाँ तमाम मतभेद खुद-ब-खुद खत्म हो जाएँ। असल वजह यह है कि आज हज सिर्फ़ एक तरह की रिवायती भीड़ बनकर रह गया है, न कि किसी बड़े मक़सद को मानने वालों का ज़िंदा और जागरूक इज्तिमा।

एकता के लिए ज़रूरी है कि लोगों के सामने कोई ऐसा साझा मक़सद हो, जो उनका ध्यान ऊँचे लक्ष्य की तरफ़ मोड़ दे। अगर ऐसा बड़ा मक़सद मौजूद न हो, तो लोग छोटी-छोटी बातों में उलझे रहते हैं और बड़े-बड़े इज्तिमा के बावजूद एकजुट नहीं हो पाते। दीन का पैग़ाम लोगों तक पहुँचाना ही मुसलमानों का सबसे बड़ा मक़सद है। अगर उनके अंदर यह जज़्बा जाग जाए, तो पूरी उम्मत अपने आप एक बड़े निशाने की तरफ़ बढ़ने लगेगी। इसके बाद हज का इज्तिमा खुद-ब-खुद मुसलमानों के बीच दुनियाभर की एकता का ज़रिया बन जाएगा और साथ ही इस्लाम के पैग़ाम को दुनिया तक पहुँचाने का एक आलमी केंद्र भी।

## हज एक ज़िंदा अमल

रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने 10 हिजरी में आख़िरी हज अदा फ़रमाया। इस मौक़े पर एक लाख से ज़्यादा मुसलमानों की मौजूदगी में आपने 9 ज़िलहिज्जा को मैदान-ए-अरफ़ात में एक मुफस्सल (विस्तृत) ख़ुत्बा दिया जो ख़ुत्बा-ए-हजतुल विदा के

नाम से मशहूर है। आपके इस हज को हज्जतुल बलाग़ भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें आपने इस्लाम की तमाम बुनियादी शिक्षाओं को मुसलमानों तक पहुँचाकर उनसे उसका अहद लिया था। इसी लिये ख़ुत्बा के आख़िर में ये अल्फ़ाज़ आते हैं:

> "ख़बरदार, जो मौजूद हैं वे मेरी बात को जो मौजूद नहीं हैं उन तक पहुँचा दें। क्योंकि पहुँचाए जाने वाले अक्सर सुनने वालों से ज़्यादा महफ़ूज़ रखने वाले होते हैं। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1741) और तुमसे मेरे बारे में पूछा जाएगा, फिर तुम क्या जवाब दोगे। लोगों ने कहा हम गवाही देते हैं कि आपने अमानत अदा कर दी और पैग़ाम पहुँचा दिया और ख़ैरख़्वाही का हक़ अदा कर दिया। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अपनी उंगली आसमान की तरफ़ उठाई और फिर लोगों की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, ऐ अल्लाह तू गवाह रह, ऐ अल्लाह तू गवाह रह। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1218)

नतीजा यह हुआ कि आपकी वफ़ात के सिर्फ़ पचास साल के अंदर इस्लाम उस समय की जानी-पहचानी दुनिया के बड़े हिस्से तक पहुँच गया।

इस वाक़िये के क़रीब दो महीने बाद रसूलुल्लाह (सल्ल०) का इंतिक़ाल हो गया। उस समय तक इस्लाम सिर्फ़ अरब के इलाक़े तक ही फैला था। आपकी वफ़ात के बाद आपके सहाबा अरब से बाहर निकले और उन्होंने इस्लाम का पैग़ाम पहुँचाना अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बना लिया। उन्होंने अपनी पूरी ज़िंदगी और सारी पूँजी दीन की तालीम को लोगों तक पहुँचाने में लगा दी।

अब भी हज बाक़ायदा अदा किया जाता है और "हजतुल बलाग़" से ज़्यादा बड़े मजमे को ख़िताब करते हुए हज के इमाम हर साल उसी क़िस्म की बातें दोहराते

हैं जो पैग़म्बर (सल्ल०) ने चौदह सौ साल पहले कही थीं। मगर आज इन बातों का कोई नतीजा नहीं निकलता। इस फ़र्क की वजह क्या है। इसकी वजह यह है कि पहले हज एक ज़िंदा अमल था, आज वह एक रिवायती अमल बन गया है। पैग़म्बर (सल्ल०) ने हज के मौक़े पर जिन लोगों को ख़िताब किया था वे इस इरादा और अज़्म के साथ वहाँ जमा हुए थे कि उन्हें जो हिदायत भी दी जाएगी उसे वह पूरा करेंगे। इसके उलट, आज हाजियों की भीड़ मक्का और मदीना में सिर्फ़ इस लिए जाती है कि वह हज के नाम पर कुछ रस्में अदा करके वापस आ जाए। और जिस हाल में पहले थी उसी हाल में दोबारा रहने लगे।

इससे मालूम हुआ कि हज को एक असरदार अमल की हैसियत से ज़िंदा करने का काम सबसे पहले "हाजियों" को ज़िंदा करने का काम है। जब तक हाजियों, दूसरे लफ़्ज़ों में मुसलमानों में शऊर को न जगाया जाए, हज की इबादत उसी तरह बेअसर रहेगी, जैसे एक ख़राब बंदूक जिसका ट्रिगर दबा दिया जाए, इसके बावजूद वह फायर न करे।

## हज का जज़्बाती पहलू

क़ुरआन में अल्लाह तआला ने फ़रमाया है कि मैंने जिन्नों और इंसानों को सिर्फ इस लिए पैदा किया है कि वे मेरी इबादत करें (51:56)। इससे मालूम होता है कि अल्लाह की इबादत का जज़्बा इंसान के अंदर उसके जन्म से ही रखा गया है। इंसान को न सिर्फ यह कि वाक़ई तौर पर ख़ुदा की इबादत करना चाहिए बल्कि उसकी फ़ितरत का तक़ाज़ा भी यही है कि वह ऐसा करे। ख़ुदा की इबादत खुद इंसान की अपनी फ़ितरत है। यही वजह है कि ख़ुदा की इबादत के सिवा कोई

चीज़ इंसान को हक़ीक़ी तौर पर मुतमइन नहीं करती : “सुन लो कि अल्लाह की याद ही से दिलों को इत्मीनान हासिल होता है। (13:28)

जिस तरह एक छोटा बच्चा अपने अंदरूनी जज़्बे के तहत मजबूर होता है कि वह अपनी माँ की तरफ़ दौड़े। उसी तरह इंसान भी अपनी अंदरूनी पुकार की वजह से मजबूर है कि वह ख़ुदा की तरफ़ दौड़े। इंसान अपनी अंदरूनी शख्सियत को बदल नहीं सकता, इसलिए वह ख़ुदा को भी अपने दिल व दिमाग से निकाल नहीं सकता।

दुनिया की तारीख़ के बिलकुल शरुआती दिनों से ही इंसान मज़हबी रहा है। हर ज़माने में वह एक ख़ुदा रखता था या कई ख़ुदा, जिसकी ओर वह अपनी हिफ़ाज़त के लिए देख सके। कभी ये ख़ुदा लकड़ी के बने हुए होते थे, कभी पत्थर के। कभी जानवरों और साँपों को ख़ुदा समझ लिया गया, वगैरह। मगर किसी न किसी सूरत में वे थे। और इंसान ज़रूरी समझता था कि वह उनकी पूजा करे। क्योंकि मज़हब, एक माफ़ौक़ ताक़त (अलौकिक शक्ति) की पूजा की सूरत में, इंसान की फ़ितरत के पूरे ढाँचे में रचा बसा है।

यह एक हक़ीक़त है कि ख़ुदा का शऊर इंसान की फ़ितरत में पैदाईशी तौर पर मौजूद है। हालांकि यह समझ पूरी तरह वाज़ह नहीं है। इसलिए इंसान ऐसा करता है कि जब वह हक़ीक़ी ख़ुदा को नहीं पाता तो वह ख़ुद के बनाये हुए ख़ुदाओं की इबादत करने लगता है। फ़ितरत के ज़ोर पर उसके अंदर इबादत का जज़्बा उभरता है। अगर उसके सामने पैग़म्बर की रहनुमाई हो तो उसका यह जज़्बा उस एक खुदा जिसका कोई साझी नहीं, की सूरत में अपना जवाब पा लेगा। और अगर पैग़म्बर

की रहनुमाई उसके सामने न हो तो वह अपने जज़्बे के बनावटी सुकून के लिए ग़ैर-ख़ुदाओं को ख़ुदा मानकर उनकी इबादत करने लगेगा।

इंसान का असल लक्ष्य सिर्फ़ एक है और वह वही है जो उसका ख़ालिक़ व मालिक है। यह लक्ष्य उसकी फ़ितरत में गहराई के साथ शामिल है। इंसान यकसू (एकाग्र) होकर अपनी फ़ितरत पर ग़ौर करे तो वह खुद अपने अंदर ख़ुदा को पा लेगा। वह उसे अपने दिल की धड़कनों में महसूस करेगा। यह फ़ितरत मानो इंसान का "ला-शऊर" (अवचेतन) है। पैग़म्बर इसी ला-शऊर को शऊर (चेतना) का दर्जा देता है।

हालाँकि इंसान जैसी मख़लूक के लिए सिर्फ़ यह परोक्ष (ग़ैबी) पहचान काफ़ी नहीं होती। इंसान चाहता है कि वह खुदा को देखे और महसूस भी कर सके। लेकिन यहाँ रुकावट यह है कि ख़ुदा को सीधे तौर पर देखना, असली मायनों में, आख़िरत से पहले मुमकिन नहीं है।

## अल्लाह के शआइर (अल्लाह की निशानियाँ)

यह एक हक़ीक़त है कि ख़ुदा का हक़ीक़ी दीदार आख़िरत में होगा। मगर आख़िरत के ख़ुदाई दीदार पर यक़ीन रखते हुए भी इंसान यह चाहता है कि वह ख़ुदा को पाए। वह कल के आने से पहले आज के दिन ख़ुदा की क़ुर्बत (निकटता) हासिल करे। यह इंसान की फ़ितरत है। अब सवाल यह है कि इंसान की यह तलब मौजूदा दुनिया में किस तरह पूरी हो।

क़ुरआन, 2:158 में इसका जवाब अल्लाह के शआइर (निशानियों) की सूरत में दिया गया है। अल्लाह तआला ने कुछ चीज़ों को उनकी ख़ास तारीख़ी अहमियत की वजह से अपना शईरा (निशानी) क़रार दिया है। इन निशानियों या यादगारों के गिर्द ऐसे हालात जमा किए गए हैं कि उन्हें देखना ख़ुदा को देखना बन जाए। जिस ख़ुदा को इंसान सीधे तौर पर नहीं पा सकता, वह उसे इन यादगारों के ज़रिए पा ले। इंसान मौजूदा दुनिया में अल्लाह को नहीं देख सकता, अलबत्ता अल्लाह के शआइर को देख सकता है। वह मौजूदा दुनिया में अल्लाह को इस तरह नहीं पा सकता कि वह उसे छुए और उससे निकटता का एहसास करे। अलबत्ता वह अल्लाह की निशानियों को छू सकता है और उनके ज़रिये अल्लाह के क़रीब होने का एहसास हासिल कर सकता है।

शईरा का अर्थ है: निशान, अलामत, यादगार, और शआइर इसी की जमा (बहुवचन) है। यानी वह चीज़ जो खुद असल न हो, अलबत्ता वह किसी तअल्लुक़ की वजह से असल की याद दिलाए। इसकी एक मिसाल सफ़ा और मरवा की पहाड़ियाँ हैं जिन्हें क़ुरआन में शआइर कहा गया है "सफ़ा और मरवा, बेशक अल्लाह की यादगारों में से हैं। (2:158)

सफ़ा और मरवा मक्का में काबा के क़रीब दो पहाड़ियाँ हैं जिनके दरमियान तक़रीबन 500 क़दम का फ़ासला है। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने जब अपनी पत्नी हाजरा और अपने दूध-पीते बच्चे इस्माईल को लाकर यहाँ बसाया तो यहाँ न कोई आबादी थी और न पानी। हज़रत हाजरा की मश्क का पानी ख़त्म हो गया तो वह सफ़ा और मरवा के बीच पानी की तलाश में सात बार दौड़ीं। उसी की याद में आज भी तमाम हाजी दोनों पहाड़ियों के दरमियान सात बार सई (दौड़) करते हैं।

यह अमल अल्लाह को पसंद आया और उसने सफ़ा और मरवा को अपनी निशानी क़रार दे दिया। यानी ख़ुदा-परस्ती की मुस्तनद (यक़ीनी) यादगार। सफ़ा और मरवा को देखकर वह पूरी तारीख़ याद आ जाती है जब कि अल्लाह के एक बंदे ने सिर्फ़ अल्लाह की रज़ा की ख़ातिर अपने हरे-भरे वतन (इराक़) को छोड़ दिया और अपने बीवी और बच्चे को सूखे और वीरान इलाक़े में लाकर बसा दिया। यह अल्लाह पर यक़ीन और उस पर भरोसे की एक मुकम्मल मिसाल है।

इसी तरह काबा, हजरे अस्वद और हज से मुतअल्लिक दूसरी चीज़ें सब की सब अल्लाह की शआइर (निशानियाँ) हैं। ये दरअसल हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह की ख़ुदा-परस्ती वाली ज़िंदगी की यादगार निशानियाँ हैं। इन्हें देखकर उनकी तौहीद से जुड़ी पूरी तारीख़ ज़हन में ताज़ा हो जाती है। इनके ज़रिये ख़ुदा की अज़मत और जलाल का एहसास भी दिल में फिर से जाग उठता है। इन शआइर के माहौल में पहुँचकर इंसान अपने आपको यूँ महसूस करता है, मानो वह ख़ुदाई माहौल में आ गया हो।

एक हदीस के मुताबिक़ हजरे अस्वद ज़मीन में अल्लाह का हाथ है (*कंज़ुल उम्माल*, हदीस संख्या 38072)। यह हक़ीक़ी मायनों में नहीं बल्कि तम्सीली (प्रतिकात्मक) मायनों में है। आदमी के अंदर उठने वाले रब्बानी जज़्बात अपनी तसकीन (तृप्ति) के लिए यह चाहते थे कि वे अल्लाह के हाथ को छुएँ और उसे छूकर अपने जज़्बे को मुतमइन करें, हजरे अस्वद को चूमकर आदमी अपने इसी जज़्बे की तसकीन (तृप्ति) हासिल करता है। इसी तरह आदमी चाहता था कि वह अल्लाह को पाकर उसके गिर्द घूमे, काबा के मुक़द्दस घर का तवाफ़ करके वह अपने इसी जज़्बे को तसकीन देता है। आदमी चाहता था कि वह अल्लाह

की रज़ा के लिए दौड़े, वह सफ़ा और मरवा के दरमियान दौड़ता है तो उसे यही तसकीन (तृप्ति) हासिल होती है। इसी तरह हज के तमाम मरासिम किसी न किसी एतबार से इंसान के छिपे हुए जज़्बात की तस्कीन हैं। वे अपने रब से महसूस तअल्लुक़ क़ायम करने का ज़रिया हैं।

माबूद की इबादत का जज़्बा फ़ितरी तौर पर इंसान के अंदर छिपा हुआ है। शिर्क और बुत-परस्ती इसी फ़ितरी जज़्बे का ग़लत इस्तेमाल है। एक ख़ुदा पर ईमान यह फ़ितरी जज़्बे को सही दिशा देता है, यही बात हज के मरासिम में भी है। हज एक तरह से इंसानी ग़लती को ठीक करना है। यह इंसान की चाहत को ग़लत दिशा में जाने से रोकता है और उसे सही दिशा में लगा देता है। हज इंसान के उसी जज़्बे को सुकून देने का सही तरीक़ा है, जिसे इंसान ग़लत तरीक़े से सुकून देना चाहता है।

इंसान यह चाहता है कि वह ख़ुदा को देखे, वह महसूस तौर पर उसे पाकर उसके आगे इबादत के मरासिम अदा करे। इंसान ने अपने इस जज़्बे की तसकीन के लिए यह किया कि उसने न दिखाई देने वाले ख़ुदा की दिखने वाली तस्वीर (image) बनाई और इस खुद-साख़्ता (self-made) तस्वीर को ख़ुदा की तस्वीर समझकर उसकी पूजा शुरू कर दी। मगर यह क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में इलहाद (बे-दीनी) है। इंसान अपने जिस फ़ितरी जज़्बे का जवाब खुदा के बुतों में तलाश कर रहा है उसका जवाब ज़्यादा सही तौर पर ख़ुदाई यादगारों में मौजूद है।

ख़ुदा का बुत बनाना वैसा ही है जैसे किसी इंसान की मूर्ति बनाना। मूर्ति वही बनाता है जिसने उस इंसान को या उसकी तस्वीर को देखा हो। लेकिन ख़ुदा के बारे में कोई भी यह दावा नहीं कर सकता। जब कोई इंसान ख़ुदा का बुत बनाता है, तो वह असीम को सीमित बना देता है। वह एक ऊँची और श्रेष्ठ हस्ती को

साधारण चीज़ों में ढाल देता है। इस तरह का हर काम हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है और असल में यह सरकशी जैसा है।

हज एक तरह से इंसानी ज़ेहन को ठीक करने का ज़रिया है। हज का पैग़ाम यह है कि ख़ुदा को "मुजस्समा" के स्तर पर उतारने की कोशिश न करो, बल्कि उसे उसके "शआइर" की सतह पर समझो। इस दुनिया में तुम ख़ुदा को उसकी ज़ात के स्तर पर नहीं पा सकते, लेकिन उसे उसकी निशानियों के स्तर पर पा सकते हो। ये शआइर वे हैं जो ख़ुदा के सच्चे इबादत करने वालों के अमल से क़ायम हुए हैं। ये तारीख़ के उन पलों की भौतिक यादगारें हैं, जब ख़ुदा और बंदे के बीच सीधा रिश्ता क़ायम हुआ—जब बंदे ने ख़ुदा को पाया और ख़ुदा ने अपने आप को बंदे के लिए ज़ाहिर किया।

तारीख़ के वे क़ीमती लोग जिन्होंने ख़ुदा-परस्ती को उसकी आला और मेयारी शक्ल में इख़्तियार किया, उनके आसार ही का नाम अल्लाह के शआइर (यादगारें) हैं। इन्हीं शआइर के दरमियान हज के तमाम मरासिम (विधियाँ) अदा किए जाते हैं। उनसे दूरी ख़ुदा से दूरी है और उनसे ताल्लुक़ ख़ुदा से तल्ल्लुक़।

## हज अल्लाह से मुलाक़ात है

हज के कई पहलू होते हैं, लेकिन उसका ख़ास पहलू यह है कि हज अल्लाह तआला से मुलाक़ात जैसा है। जब आदमी सफ़र करके हज के मक़ामात तक पहुँचता है, तो उस पर एक ख़ास कैफ़ियत छा जाती है। उसे ऐसा लगता है जैसे वह "अपनी दुनिया" से निकलकर "ख़ुदा की दुनिया" में आ गया हो। वह अपने रब को छू रहा है, उसके गिर्द घूम रहा है, उसकी तरफ़ दौड़ रहा है, उसकी ख़ातिर

इधर-उधर जा रहा है। वह उसके सामने क़ुर्बानी पेश कर रहा है, उसके दुश्मन को कंकरीयाँ मार रहा है। वह उससे माँग रहा है जो कुछ माँगना चाहता है, और उससे पा रहा है जो कुछ पाना चाहता है।

अरफ़ात का मैदान इस सिलसिले में बड़ा अजीब मंज़र पेश करता है। ख़ुदा के बंदे काफ़िला दर काफ़िला चारों तरफ़ से चले आ रहे हैं। सबके जिस्म पर एक ही सादा लिबास है, और हर व्यक्ति अपनी अलग पहचान और खासियत को पीछे छोड़ दिया है। सब की ज़बान पर एक ही कलाम जारी है (हाज़िर हूँ ख़ुदाया मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ ख़ुदाया मैं हाज़िर हूँ)।

यह मंज़र देखकर क़ुरआन की वह आयत याद आने लगती है जिसमें बताया गया है कि जब सूर फूँका जाएगा तो अचानक तमाम लोग क़ब्रों से निकल कर अपने रब की तरफ़ दौड़ पड़ेंगे (36:51)। हक़ीक़त यह है कि अरफ़ात का इज्तिमा हश्र के इज्तिमा की पेशगी ख़बर है। यह आज की दुनिया में आने वाली दुनिया की तस्वीर दिखाना है। हदीस में आया है कि "अरफ़ात के मैदान में ठहरना ही हज है (सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस संख्या 889)। इससे मालूम होता है कि हज का सबसे अहम मक़सद क्या है। वह यह है कि आदमी हश्र के मैदान में ख़ुदा के सामने अपनी हाज़िरी को याद करे। जो कुछ कल अमली तौर पर होने वाला है उसे आज ही ज़ेहनी तौर पर अपने ऊपर तारी कर ले।

काबा अकेले ख़ुदा का घर है। इसे दो अज़ीम पैग़म्बरों (हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल) ने मिलकर बनाया। इन पैग़म्बरों की श्रेष्ठ ज़िंदगी और ख़ुदा के लिए उनकी क़ुर्बानी के हैरतअंगेज़ वाक़ये इस घर से संबंधित हैं। फिर आख़िरी पैग़म्बर (सल्ल०) और उनके अस्हाब की ज़िंदगियाँ और उनकी ख़ुदा-परस्ताना सरगर्मियाँ इसके माहौल में बसी हुई हैं।

ख़ुदा-परस्ती और ख़ुदा के लिए क़ुर्बानी की इस बे-मिसाल तारीख़ को आदमी किताबों में पढ़ता है। वह बचपन से लेकर हज के सफ़र तक इसे लगातार सुनता है। यहाँ तक कि यह उसके हाफ़िज़े (याददाश्त) का हिस्सा बन जाती है। ऐसी हालत में जब वह सफ़र करके काबा के सामने पहुँचता है तो ज़ेहन की तमाम यादें अचानक उसके अंदर जाग उठती हैं। वह अपने आप को एक तारीख़ के सामने खड़ा हुआ पाता है। ख़ुदा से ख़ौफ़ और मोहब्बत की तारीख़, ख़ुदा के लिए क़ुर्बान हो जाने की तारीख़, ख़ुदा को अपना सब कुछ बना लेने की तारीख़, ख़ुदा को सर्वशक्तिमान के रूप में पा लेने की तारीख़, ख़ुदा की ख़ातिर अपने आप को मिटा देने की तारीख़।

इस तरह एक महान रूहानी तारीख़ इंसान के सामने काबा की शक्ल में आ जाती है। काबा उसे पत्थर की सिर्फ़ एक ईमारत नहीं बल्कि अल्लाह की एक अज़ीम तारीख़ी निशानी महसूस होने लगता है। और यह अनुभव उसके दिमाग़ को हिला देता है, वह उसके सीने को पिघला देता है। वह उसे बदल कर नया इंसान बना देता है।

## मुसीबत में राहत

हज के मौक़े पर एक वक़्त में सारी दुनिया के लोग जमा होते हैं। इस बिना पर हज में बार-बार एक को दूसरे से तकलीफ़ पहुँचती है। बार-बार ऐसे मौक़े सामने आते हैं जो आदमी की तबीयत पर बेहद तकलीफदेह महसूस होते हैं। ऐसे मौक़ों पर आदमी अगर अपने आप को अल्लाह की तरफ़ मुतवज्जेह कर ले तो उसका हाल बिल्कुल दूसरा हो जाएगा। इसके बाद उसके लिए एक अप्रिय

अनुभव एक सुखद अनुभव बन जाएगा। इसके बाद वही चीज़ उसके लिए रब्बानी रिज़्क़ का सबब बन जाएगी जो आम हालात में सिर्फ मन के रिज़्क़ का ज़रिया बनती है।

मिसाल के तौर पर आप मस्जिदे हराम में नमाज़ के लिए खड़े हैं कि इंसानों की भीड़ अंदर दाख़िल हुई और जगह न होने की वजह से ऐन आपके सामने सफ़ बाँधकर खड़ी हो गई। आपके सामने इतनी जगह बाक़ी न रही कि आप अच्छी तरह रुकू और सज्दा करें। ऐसे मौक़े पर अगर आप सिर्फ़ सामने के इंसानों को देखें तो आपके अंदर ग़ुस्सा और नफ़रत पैदा होगी। इसके उलट, अगर आप खुद अपना एहतिसाब करने लगें तो आपका हाल बिल्कुल दूसरा हो जाएगा। आप कह उठेंगे कि ख़ुदाया, तू मेरी इस टूटी-फूटी नमाज़ को क़बूल कर ले। क्योंकि मेरी बज़ाहिर सही नमाज़ भी हक़ीक़त में उतनी ही टूटी-फूटी नमाज़ है जितनी कि मेरी यह नमाज़। जो शख़्स अपने ज़ेहन को इस तरह मोड़े उसका हाल बिल्कुल दूसरा हो जाएगा। जिस वाक़ए से अक्सर लोग सिर्फ इंसान से नफरत की ख़ुराक लेते हैं उसी वाक़ए से उसे ख़ुदा की क़ुर्बत की ख़ुराक मिलने लगेगी।

इसी तरह हज के सफ़र में तरह-तरह के नाख़ुशगवार तजुर्बात पेश आते हैं। रमी और दूसरे मौक़ों पर इंसानों की भीड़, मिना और अरफ़ात में गर्मी की शिद्दत, पानी लेने के लिए एक का दूसरे पर टूटना, वगैरह। इस क़िस्म की जो मुख़्तलिफ़ सूरतें हज के सफ़र में पेश आती हैं, उनमें अगर आप सिर्फ सामने के वाक़ए को देखें तो आपके अंदर ग़ुस्सा और झुंझलाहट का जज़्बा भड़केगा। इसके उलट, अगर आप उस वक़्त यह सोचने लगें कि जब दुनिया की छोटी मुसीबत का यह हाल है तो आख़िरत की बड़ी मुसीबत का क्या हाल होगा, तो अचानक आप यह महसूस

करेंगे कि जो चीज़ बज़ाहिर मुसीबत नज़र आ रही थी वह ऐन राहत बन गई। उसने ख़ुदा की रहमत बनकर आप पर साया कर लिया।

## योग्यता के अनुसार लाभ

काबा ज़मीन पर ख़ुदा की निशानियों में से एक निशानी है। अल्लाह तआला ने तारीख़ी तौर पर यहाँ ऐसे सामान मुहय्या किए हैं कि जो शख़्स वहाँ जाए वह असर लिए बिना न रहे। यह वह मक़ाम है जहाँ भटकी हुई इंसानी रूहों को ख़ुदा की गोद मिल जाती है। वहाँ पत्थराए हुए सीनों में बंदगी के चश्मे जारी किए जाते हैं। वहाँ बेनूर आँखों को ख़ुदा की तजल्ली (रौशनी) दिखायी जाती है। इसी के साथ इस दुनिया में "*फ़ैज़ बक़द्र-ए-इस्तिदाद*" (योग्यता के एतेबार से लाभ) का उसूल जारी है। अल्लाह के घर का फ़ैज़ (लाभ) उसी को मिलता है जो अपने अन्दर सलाहियत लेकर वहाँ जाए। बे-सलाहियत लोगों के लिए हज का सफ़र बस एक क़िस्म का सैर-सपाटा है। वे वहाँ जाते हैं ताकि जैसे गए थे वैसे ही दोबारा वापस चले आएँ।

## हज ईमान की तजदीद (नवीकरण) है

हज एक क़िस्म की ईमान की तजदीद है। हज से पहले का ईमान मनो एक वक़्ती ईमान है। इसके बाद मोमिन जब मक्का पहुँचता है और लब्बैक लब्बैक कहकर अल्लाह के घर (काबा) का तवाफ़ करता है तो गोया वह अपने ईमान की तजदीद (नवीकरण) करता है। वह सीधे तौर पर ख़ुदा से 'बैअत' होता है।

हज के बाद गुनाहों की माफ़ी ऐन उस क़ानून के तहत है जो इस्लाम को कुबूल करने से मुतअल्लिक़ है। इस्लाम क़बूल करने के बाद आदमी के पिछले गुनाह माफ़ हो जाते हैं। बंदे के साथ यह मामला पहले ईमान के बाद शुरू हो जाता है। और दूसरे ईमान के बाद जैसे वो मुकम्मल होता है। पहला ईमान अगर बिलवास्ता (indirect) ईमान था तो दूसरा ईमान बराह-ए-रास्त (direct) ईमान है। माज़ूरी (असमर्थता) की हालत में पहला ईमान ही ख़ुदा की रहमत से आदमी के गुनाहों की माफ़ी के लिए काफ़ी हो जाता है। मगर जो ताक़त रखता है उसके लिए दूसरे ईमान के बाद उसकी तकमील होती है। शायद इसी लिए हदीस में आया है कि:

> "जो शख़्स ताक़त रखता हो और फिर भी हज अदा किए बग़ैर मर जाए तो ख़ुदा को उसकी परवाह नहीं कि वह यहूदी होकर मरे या नसरानी होकर मरे" (*सुनन अल-तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 812)

इस्लाम का ख़ुलासा अपने आप को अल्लाह के हवाले करना है। हज में यह हवालगी (surrender) पूरी तरह अमल में आती है। अरफ़ात के मैदान में जब तमाम हाजी "हाज़िर हूँ, ख़ुदाया, मैं हाज़िर हूँ" कहते हुए जमा होते हैं तो यह उसी बात का एक इज्तिमाई मुज़ाहिरा (सामूहिक प्रदर्शन) होता है। हज गोया ख़ुदा के सामने हाज़िरी है। क़यामत में हर शख़्स गिरफ़्तार करके ख़ुदा के यहाँ हाज़िर किया जाएगा, हज के मौक़े पर अरफ़ात के मैदान में पहुँचना जैसे ख़ुद अपनी मर्ज़ी से ख़ुदा के यहाँ हाज़िर हो जाना है।

"हक़ीक़त यह है कि हज तमाम इबादतों का सरदार है। काबा का जो दर्जा दूसरी मस्जिदों के बीच है वही दर्जा हज का दूसरी इबादतों के दरमियान।"

# हज और इत्तेहाद

हज का एक पहलू इस्लामी इत्तेहाद है। हज के मौक़े पर तमाम दुनिया के मुसलमान एक जगह पर इकट्ठा होते हैं और एक साथ हज के मरासिम (विधियाँ) अदा करते हैं। हज पूरी दुनिया के मुसलमानों का दीनी इज्तिमा है। इस सिलसिले में क़ुरआन की कुछ आयतों पर ग़ोर कीजिए:

> "और जब हमने अल्लाह के घर को लोगों के इज्तिमा की जगह और अमन का मक़ाम बना दिया।" (2:125)
>
> "बेशक पहला घर जो लोगों के लिए बनाया गया वह वही है जो मक्का में है, बरकत वाला और सारे जहाँ के लिए हिदायत का मरकज़।" (3:96)।
>
> "अल्लाह ने काबा, आदर वाले घर को लोगों के लिए ज़िन्दगी की बेहतरी का ज़रिया बनाया।" (5:97)।

# तौहीद का आलमी मरकज़

क़ुरआन की इन आयतों से मालूम होता है कि हज़रत इब्राहीम के ज़रिये हिजाज़ में काबा की तामीर ख़ास तौर पर इस लिए की गई थी कि वह तौहीद वालों का मरकज़ बने। क़रीब के लोग भी आएँ और दूर के लोग भी सवारियों के ज़रिये वहाँ पहुँचें। काबा के आस-पास ऐसे तारीख़ी वजहें पैदा की गईं कि लोगों के दिल उसकी तरफ़ खिंचें। और हर तरफ़ से लोग उमड कर वहाँ पहुँचें। बैतुल्लाह क़यामत तक के लिए ख़ुदा का मुक़र्रर किया हुआ आलमी (वैश्विक) इस्लामी मरकज़ है। वह तमाम दुनिया के मुसलमानों के जमा होने की जगह है।

हज इस्लाम की एक बहुत अहम सालाना इबादत है। यह चाँद के कैलेंडर के आख़िरी महीने ज़िलहिज्जा में अदा किया जाता है। हज की इबादत के काम बैतुल्लाह (मक्का) में या उसके आस-पास के मक़ामात पर अदा किए जाते हैं, जो अरब में हैं। इस इबादत को तमाम इबादतों का जामे कहा जाता है, क्योंकि इसमें हर तरह के इबादती पहलू पाए जाते हैं। इन्हीं में से एक सामूहिक पहलू भी है। हज की इबादत में सामूहिकता का पहलू बहुत साफ़ तौर पर मौजूद है। इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) में हज का ज़िक्र करते हुए यह जुमला लिखा गया है:

> "About 2,000,000 persons perform the Hajj each year. and the rite serves as a unifying force in Islam by bringing followers of diverse background together in religious celebration." (*एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका*, 1985, खंड 4, पृष्ठ 844)

तक़रीबन 20 लाख आदमी हर साल हज करते हैं और यह इबादत मुख़्तलिफ़ मुल्कों के मुसलमानों को एक मज़हबी सभा में इकट्ठा करके इस्लाम में एकता की ताक़त पैदा करती है।

क़ुरआन में हज का हुक्म देते हुए यह अल्फ़ाज़ आए हैं: "अल्लाह ने बैतुल्लाह को लोगों के लिए जमा होने की जगह बनाया और उसे अम्न की जगह बना दिया।" (2:125)। "मसाबा" के मायने अरबी ज़बान में तक़रीबन वही हैं जिसे आज की ज़बान में केंद्र कहा जाता है, यानी वह जगह जहाँ लोग जमा हों, जिसकी तरफ़ सब लोग लौटें, जो सबका साझा मरकज़ हो।

हज की इबादत के लिए सारी दुनिया से हर मुल्क के लोग आते हैं। हर क़ौम के लोग आते हैं। उनकी तादाद सालाना तक़रीबन 25 लाख हो जाती है। हज के मौसम में मक्का और उसके आस-पास हर तरफ़ आदमी ही आदमी दिखाई देने लगते हैं। यह लोग मुख़्तलिफ़ ज़बानें बोलते हैं, उनके हुलिए अलग-अलग होते हैं, मगर यहाँ आने के बाद सबकी सोच एक हो जाती है। सब एक ही निशाने पर चलते नज़र आते हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे कोई रब्बानी चुम्बक है जो "लोहे" के तमाम टुकड़ों को एक नुक्ते पर खींचे चला जा रहा है।

अलग अलग मुल्कों के यह लोग जब हज के मक़ाम के क़रीब पहुँचते हैं तो सब के सब अपना क़ौमी लिबास उतार देते हैं और सब के सब एक ही जैसा लिबास पहन लेते हैं, जिसे एहराम कहा जाता है। एहराम बाँधने का मतलब यह है कि बिना सिली हुई एक सफ़ेद चादर जो नीचे तहमद की तरह पहन ली जाए और इसी तरह एक सफ़ेद चादर ऊपर से जिस्म पर डाल ली जाए। इस तरह लाखों इंसान एक तरह के एक ही रंग के लिबास पहने हुए होते हैं।

यह सारे लोग मुख़्तलिफ़ मरासिम (विधियाँ) अदा करते हुए आख़िरकार अरफ़ात के विशाल मैदान में इकट्ठा होते हैं। उस वक़्त एक अजीब मंज़र होता है। ऐसा मालूम होता है जैसे इंसानों के तमाम फ़र्क़ अचानक मिट गए हैं। तमाम इंसान अपने तमाम मतभेदों को भूलकर एक ही ख़ुदा में गुम हो गए हैं। तमाम इंसान उसी तरह एक हो गए हैं, जैसे उनका ख़ुदा एक है।

अरफ़ात के विशाल मैदान में जब एहराम बाँधे हुए तमाम हाजी जमा होते हैं, उस वक़्त किसी बुलंदी से देखा जाए तो ऐसा नज़र आएगा कि ज़बान, रंग, हैसियत, नस्ल के फ़र्क़ के बावजूद सब के सब इंसान बिल्कुल एक हो गए हैं। उस वक़्त मुख़्तलिफ़ क़ौमें एक ही बड़ी क़ौमियत में शामिल नज़र आती हैं। हक़ीक़त यह

है कि हज इज्तिमाइयत (सामूहिकता) का इतना बड़ा प्रदर्शन है कि उसकी कोई दूसरी मिसाल ग़ालिबन दुनिया में कहीं और नहीं मिलेगी।

काबा मुसलमानों का इबादत का क़िबला है। मुसलमान हर रोज़ पाँच वक़्त उसकी तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़ते हैं। इस तरह सारी दुनिया के मुसलमानों का इबादती क़िबला एक ही है। आम हालत में यह एक ऐसी हक़ीक़त है जो सोच से मुताल्लिक है, मगर हज के दिनों में मक्का पहुँचकर वह एक आँखों देखी हक़ीक़त बन जाती है। सारी दुनिया के मुसलमान यहाँ पहुँचकर जब उसकी तरफ़ रुख़ करके नमाज़ अदा करते हैं तो महसूस तौर पर दिखाई देने लगता है कि तमाम दुनिया के मुसलमानों का साझा क़िबला एक ही है।

काबा एक चौकोर ऊँची इमारत है। इस इमारत के चारों तरफ़ गोल दायरे में सारे लोग घूमते हैं, जिसे तवाफ़ कहा जाता है। वह सफ़ लगाकर उसके गिर्द गोल दायरे में इबादत करते हैं। हज के दौरान वह उनकी तमाम तवज्जोह का मरकज़ बना रहता है। इस तरह हज एक ऐसी इबादत बन जाता है जो अपने तमाम कार्यों और आयोजन के साथ इंसान को इज्तिमाइयत (सामूहिकता) और मरकज़ियत (केंद्रीयता) का सबक़ देता है।

## इत्तेहाद का मरकज़

हज अपनी असल हक़ीक़त के एतबार से ख़ुदा की तरफ़ सफ़र है। आम इंसान मौत के बाद ख़ुदा के दरबार में हाज़िर होंगे, सच्चे ईमान वाला मौत से पहले ही अपने आप को ख़ुदा के दरबार में हाज़िर कर देता है। दूसरों की ख़ुदा के यहाँ हाज़िरी जबरन हाज़िरी है और सच्चे ईमान वाले की ख़ुदा के यहाँ हाज़िरी अपनी

मर्ज़ी से हाज़िरी। अरफ़ात के मैदान में एक वक़्त में सारी दुनिया के हाजियों का इज्तिमा यही मंज़र पेश करता है। इसी लिए हदीस में आया है: अरफ़ा ही हज है। (*सुनन अल-तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 889)

हज एक ऐसी व्यापक इबादत है, जिसके अंदर दूसरी इबादतों के पहलू भी किसी न किसी रूप में शामिल होते हैं। इनमें से एक यह भी है कि हज इस्लाम के आलमी इत्तेहाद का ज़रिया है। काबा मानो वह केंद्र बिंदु है, जिसके चारों ओर खुदा के मानने वाले दुनिया भर के लोगों का घेरा बनता है।

अरफ़ात की हाज़िरी का असल पहलू वही है जो आख़िरत से मुतअल्लिक है। हालाँकि इसमें मुसलमानों  के इत्तेहाद का भी गहरा राज़ छुपा हुआ है। क्योंकि इत्तेहाद एक मरकज़ पर जमा होने का नाम है। मुसलमान जब हज के मौक़े पर अपने रब के गिर्द इकट्ठा होते हैं तो इस अमल के दौरान वह उस केंद्र बिंदु को भी पा लेते हैं जो उनकी अनेकता को एकता में बदल सके। वह अपनी आख़िरत का राज़ पाने के साथ अपनी दुनिया का राज़ भी पा लेते हैं।

मेरे सामने दीवार पर बैतुल्लाह (काबा) की तस्वीर है। कुशादा मस्जिद के बीच काबा की जानी-पहचानी इमारत है और उसके चारों तरफ़ लाखों इंसान गोल दायरे में अपने रब के आगे झुके हुए इबादत कर रहे हैं। यह सालाना इज्तिमाई (सामूहिक) नमाज़ है जो हर बार हज के महीने में अदा की जाती है। इसमें दुनिया भर के 25 लाख से ज़्यादा मुसलमान शरीक होते हैं। यह पूरी तरह एक दिखाई देने वाला वाक़िया है और इसका फोटो लिया जा सकता है।

मगर काबा को क़िब्ला बनाकर उसके गिर्द नमाज़ पढ़ने वाले सिर्फ़ वही लोग नहीं हैं जो हरमे काबा (तवाफ़ करने की जगह) में दिखाई देते हैं, हरमे काबा के बाहर

के मुसलमानों का मामला भी यही है। तमाम अरब के लोग इसी तरह रोज़ाना काबा की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ अदा करते हैं। इसी तरह पूरी दुनिया के हर देश के मुसलमान भी ऐसा ही करते हैं। यह दायरा बढ़ता रहता है यहाँ तक कि वह पूरी ज़मीन पर फैल जाता है।

आप तसव्वुर की आँखों से देखिए तो जो वाक़िया काबा के सेहन में होता है वही वाक़िया ज़्यादा बड़े पैमाने पर हर रोज़ सारी दुनिया में हो रहा है। सारी दुनिया के लोग रोज़ाना पाँच बार काबा की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ अदा करते हैं।

वह सारी दुनिया में काबा के चारों तरफ़ खड़े होते हैं। इस तरह गोया हर रोज़ पाँच बार ज़मीन पर मुसलमानों का गोल घेरा बनता है। बीच में काबा होता है और सारी दुनिया में उसके गिर्द घेरा बनाए हुए मुसलमान नमाज़ अदा कर रहे होते हैं। यह एक ऐसी अज़ीम और मुकम्मल एकजुटता है जिसकी मिसाल किसी भी दूसरे मज़हबी या ग़ैर-मज़हबी के यहाँ नहीं मिलती।

हक़ीक़त यह है कि काबा ज़मीन पर ख़ुदा का निशान है और इसी के साथ मुसलमानों के इत्तेहाद और एकजुटता का निशान भी। एकता के इस अज़ीमतर बुनियादी निज़ाम ही का यह भी एक ज़ाहिरी पहलू है कि तमाम लोगों से उनके अपने लिबास उतरवा कर सब को एक ही सादा लिबास पहना दिया जाता है। यहाँ बादशाह और जनता का फ़र्क़ मिट जाता है। यहाँ पूरबी लिबास और पश्चिमी लिबास के फ़र्क़ हवा में गुम हो जाते हैं। एहराम के साझा लिबास में तमाम लोग इस तरह नज़र आते हैं जैसे कि तमाम लोगों की सिर्फ़ एक हैसियत है। तमाम लोग सिर्फ़ एक ख़ुदा के बंदे हैं। इसके सिवा किसी को कोई और हैसियत हासिल नहीं।

हज के मुक़र्रर मरासिम (विधियाँ) अगरचे मक्का में ख़त्म हो जाते हैं मगर अक्सर

हाजी हज से फ़ारिग़ होकर मदीना भी जाते हैं। मदीना का क़दीम नाम यस्रिब था। मगर पैग़म्बरे इस्लाम ने अपनी ज़िंदगी के आख़िरी ज़माने में इसे अपना मरकज़ बनाया। उस वक़्त से इसका नाम मदीना-तुन-नबी (नबी का शहर) पड़ गया। मदीना इसी का इख़्तिसार (छोटा नाम) है। मदीना में रसूलुल्लाह (सल्ल०) की बनाई हुई मस्जिद है। यहाँ आपकी क़ब्र है। यहाँ आपकी पैग़म्बर वाली ज़िंदगी के निशानात बिखरे हुए हैं।

इन हालात में हाजी जब मदीना पहुँचते हैं तो यह उनके लिए ज़्यादा इत्तेहाद और इज्तिमाइयत का अज़ीम सबक बन जाता है। यहाँ की मस्जिदे नबवी में वह इस याद को ताज़ा करते हैं कि उनका रहनुमा सिर्फ़ एक है। वह यहाँ से यह एहसास लेकर लौटते हैं कि उनके अंदर चाहे कितना ही इलाक़े और मुल्क का फ़र्क़ पाया जाता हो, उन्हें एक ही पैग़म्बर के बताए हुए रास्ते पर चलना है। उन्हें एक ही मुक़द्दस हस्ती को अपनी ज़िंदगी का रहनुमा बनाना है। वह चाहे कितने ही ज़्यादा और कितने ही मुख़्तलिफ़ हों मगर उनका ख़ुदा भी एक है और उनका पैग़म्बर भी एक।

## परहेज़गारी का सबक़

हज के बारे में जो आयतें क़ुरआन में आई हैं, उनमें से एक आयत यह है:

> “हज के निर्धारित महीने हैं। तो जिसने हज का इरादा कर लिया तो फिर उसे हज के दौरान न कोई गन्दी बात करनी चाहिए और न गुनाह की और न लड़ाई-झगड़े की। और जो भला काम तुम

करोगे अल्लाह उसे जान लेगा। और तुम ज़ादेराह (provision for travel) लो। बेहतरीन ज़ादेराह तक़्वा (अल्लाह का डर) है। और ऐ अक़्ल वालो! मुझसे डरो। (2:197)।

इस्लाम से पहले जाहिलियत के ज़माने में भी हज का रिवाज था। मगर उन लोगों के लिए हज एक क़िस्म का क़ौमी मेला था, न कि एक अल्लाह की इबादत का ज़रिया। चुनाँचे उस ज़माने में हज के दिनों में वह सब कुछ होता था जो क़ौमी मेलों में आम तौर पर होता है। इस्लाम ने इन तमाम चीज़ों को बंद कर दिया।

इस सिलसिले का एक हुक्म यह दिया गया कि हज के ज़माने में रफ़स और फ़ुसूक और जिदाल से मुकम्मल परहेज़ किया जाए। रफ़स से मुराद बेहयाई की बातें हैं। फ़ुसूक का मतलब अल्लाह की नाफ़रमानी है। और जिदाल से मुराद आपस का लड़ाई-झगड़ा है। यह चीज़ें आम हालात में भी मना हैं, मगर हज के दिनों में इनसे ख़ास सतर्कता के साथ बचने के लिए कहा गया। इसकी एक ख़ास वजह यह है कि सफ़र और इज्तिमा की वजह से हज के दिनों में इन चीज़ों के मौक़े दूसरे दिनों के मुक़ाबले ज़्यादा पेश आते हैं। आदमी का शऊर अगर इन बुराइयों के ख़िलाफ़ पूरी तरह बेदार न हो तो अंदेशा है कि इस ज़माने में वह जानते-बूझते हुए या अनजाने में इसमें पड़ जाएगा।

ईमान वाला इंसान वह है जो सिर्फ़ अपनी इच्छाओं के लिए नहीं, बल्कि एक अच्छे मक़सद के लिए जीता है। वह अपने हर काम में ख़ुदा की नाफ़रमानी से बचने की कोशिश करता है और लोगों के बीच झगड़ों से दूर रहता है। ये गुण हर ईमानदार इंसान में होने चाहिएं, लेकिन हज के समय तो यही असली पहचान बन जाते हैं कि कोई सच में हाजी बना है या नहीं। अगर इंसान में वह तक़्वा आ जाए

जो हज के सफ़र में आना चाहिए, तो वह इन बुराइयों में कभी नहीं पड़ेगा। ये सारी बातें तक़्वा को ख़त्म करती हैं। जहाँ ये होंगी, वहाँ तक़्वा नहीं होगा, और जहाँ तक़्वा होगा, वहाँ ये बुराइयाँ अपने आप ख़त्म हो जाएँगी।

## ज़्यादा एहतिमाम

हज के दिनों में जो कुछ करना मना है वह वही है जिसे बाक़ी दिनों में भी करना मना है। हज के दौरान इन चीज़ों से रोकना ख़ास तर्बियत के लिए है। हज में शरीअत की मना की हुई इन चीज़ों पर आख़िरी हद तक अमल कराया जाता है ताकि इनके बारे में आदमी का एहसास तेज़ हो और बाकी दिनों में इनसे बचने की ख़ुसूसी क़ाबिलियत उसके अंदर पैदा हो जाए।

इंसान जब अपने घर और कारोबार में होता है तो वह अपने ज़ाती मामलात में उलझा रहता है। वह इससे आगे की हक़ीक़तों को भूल जाता है। इसलिए आदमी को रोज़ाना नमाज़ की अदायगी के लिए मस्जिद में लाया जाता है ताकि कुछ देर के लिए वह अपने ज़ाती माहौल से अलग हो और अपने ज़हन को दूसरी चीज़ों से खाली करके ध्यान के साथ ख़ुदा की तरफ़ मुतवज्जह हो सके। हज का सफ़र भी कुछ ऐसा ही होता है। हज के दिनों में इसी मक़सद से इंसान को उसके सीमित माहौल से निकालकर कुछ समय के लिए हिजाज़ (अरब) की अलग-अलग जगहों पर ले जाया जाता है। हज का मतलब है कि इंसान अपने दुनियावी माहौल से कुछ समय के लिए पूरी तरह अलग हो जाए, ताकि वह पूरे ध्यान के साथ अपने ख़ुदा की तरफ़ लग सके।

अरब के साथ बहुत सी अज़ीम दीनी रिवायतें जुड़ी हुई हैं। इस बिना पर हज के मरासिम (विधियों) की अदायगी के लिए अरब का जुग़राफ़िया सबसे ज़्यादा मुनासिब जुग़राफ़िया है। यहाँ काबा है जिसके बारे में हज़ारों साल से मुक़द्दस दीनी रवायतें क़ायम हो चुकी हैं। यहाँ पैग़म्बरों की कुर्बानी की दास्तानें लिखी गई हैं। यहाँ ख़ुदा के नेक बंदों पर हुई उसकी मेहरबानियों की यादें मौजूद हैं। यह वही ज़मीन है जहाँ ख़ुदा के आख़िरी रसूल और उनके सहाबा की ज़िंदगी के निशान दर्ज हैं।

इस क़िस्म की तारीख़ी जुड़ाव ने हज के मक़ामात के साथ ग़ैर मामूली पवित्रता और एहतिराम की फ़िज़ा जोड़ दी है। यहाँ के माहौल में पहुँचते ही आदमी के ज़हन में एक पूरी दीनी तारीख़ जाग उठती है। यहाँ बिल्कुल क़ुदरती तौर पर ऐसा होता है कि आदमी के दीनी एहसास में इज़ाफ़ा हो जाए। वह ज़्यादा संजीदगी और ध्यान के साथ ख़ुदा के मुक़र्रर फ़राइज़ को अदा करने लगे। इसी ख़ास तारीख़ी अहमियत की वजह से इस इलाक़े को ख़ुदा ने इसके लिए चुना कि यहाँ इस्लामी ज़िंदगी के बारे में एक अलामती मश्क (रिहर्सल) कराई जाए, और फिर आदमी को दोबारा उसके अपने माहौल में वापस पहुँचा दिया जाए, ताकि वह ज़्यादा बेहतर तौर पर ख़ुदा-परस्ताना ज़िंदगी गुज़ारने के क़ाबिल हो सके।

हज के ज़माने में मख़्सूस मरासिम की अदायगी के दौरान हाजी के लिए जो चीज़ें मना हैं उनमें से तीन ख़ास चीज़ों का ज़िक्र यहाँ किया जाता है।

1. ज़बान से किसी शख़्स को कोई तकलीफ़ न पहुँचाना।
2. किसी जानवर को न मारना और न उसको ज़ख़्मी करना।

3. लज़्ज़त और आराइश की चीज़ों से परहेज़, मिसाल के तौर पर नाख़ून काटना, बाल संवारना, सिला हुआ कपड़ा पहनना, ख़ुशबू लगाना, वैवाहिक रिश्ता बनाना वग़ैरह।

## बात-चीत में एहतियात

मिल-जुल कर रहने में लोगों को एक-दूसरे की जिस चीज़ से सबसे ज़्यादा सामना पेश आता है वह ज़बान है। एक शख़्स को दूसरे शख़्स से सबसे ज़्यादा तकलीफ़ ज़बान ही से पहुँचती है। हज के ज़माने में एक साथ बहुत से लोगों का साथ हो जाने की वजह से बार-बार यह मौक़ा आता है कि आदमी की ज़बान बे-क़ाबू हो जाए और एक मुसलमान से दूसरे मुसलमान को ठेस पहुँचे। चुनाँचे हज के ज़माने को ख़ुसूसियत से बात-चीत में एहतियात की तरबियत का ज़रिया बना दिया गया। ज़बान से किसी को तकलीफ़ पहुँचाना आम दिनों में इस्लामी अखलाक़ का एक हिस्सा है, मगर हज के दिनों में इसे इस्लामी इबादत का ज़रूरी हिस्सा बना दिया गया ताकि लोग ज़्यादा से ज़्यादा पाबन्दी करके अपने आप को इस समाजी बुराई से बचाएँ। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो शख़्स हज इस तरह अदा करे कि इंसान उसकी ज़बान और उसके हाथ से महफ़ूज़ रहें तो उसके अब तक के गुनाह माफ़ हो जाएँगे (*तारीख़ दमिश्क*, जिल्द 29, पृष्ठ 362)।

क़ुरआन में आया है: हज के कुछ मालूम महीने (शव्वाल, ज़िलक़ादा, ज़िलहिज्जा) हैं। जो शख़्स इन महीनों में अपने ऊपर हज लागू करे तो फिर हज में न कोई बेहयाई की बात हो और न बदज़ुबानी और न झगड़ा और न तकरार की जाए (2:197)। ज़बान से दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाने की यही तीन ख़ास सूरतें

हैं। आदमी बेहयाई की बातें अपनी ज़बान से निकालता है जो दूसरों के लिए दिल दुखाने का सबब होती हैं। वह दूसरे को बुरे अल्फ़ाज़ से याद करता है और उसके बारे में नामुनासिब बातें बोलकर उसे बेइज्ज़त करने की कोशिश करता है। वह बात-चीत के दौरान बहस और कठोर बोल पर उतर आता है। यह तमाम चीज़ें हज में बिल्कुल हराम कर दी गईं ताकि इनके बारे में आदमी के एहसासात बढ़ जाएँ और जब वह हज के पाक सफ़र से लौटे तो उसके असर से उसकी ज़बान हमेशा के लिए इन चीज़ों से महफ़ूज़ हो चुकी हो।

## हिंसा से परहेज़

हज के लिए एहराम बाँधने के बाद ज़मीन के जानवरों का शिकार करना हाजी के लिए हराम है। यहाँ तक कि शिकार किए हुए जानवर का गोश्त हदिया के तौर पर क़बूल करना, परिंदे का पर उखाड़ना, शिकार में मदद देना, शिकार के जानवर को ज़बह करने के लिए छुरी देना वग़ैरह सब हाजी के लिए हराम हैं।

हज के दौरान हाजी किसी नुकसान पहुँचाने वाले जानवर, मिसाल के तौर पर साँप को मार सकता है। या वह कुर्बानी के जानवर को ज़बह कर सकता है जो हज के मरासिम (विधियों) का एक हिस्सा है। इसके अलावा किसी जानवर को मारना या उसे तकलीफ़ देना हाजी के लिए हराम है। जानवर का शिकार आम हालात में बिल्कुल जायज़ है मगर हज के दौरान उनका शिकार करने की इजाज़त नहीं।

यह असल में एक दीनी हुक्म पर सख्ती के साथ अमल कराना है। आदमी पर यह फ़र्ज़ है कि वह इंसान को न मारे, वह किसी जानदार को न सताए। यह शरीअत का एक आम हुक्म है जो हर आदमी से हर हाल में चाहा गया है, मगर हज के दौरान इसे शिकार के जानवरों तक बढ़ा कर इस हुक्म के बारे में आदमी के एहसास को

और बढ़ाया जाता है ताकि हज से वापसी के बाद वह ज़्यादा एहतिमाम के साथ इस पर अमल कर सके। वह बाक़ी दिनों में भी लोगों के दरमियान नुक़सान न पहुँचाने वाला (no problem) इंसान बनकर रहे।

## पाबंद ज़िंदगी

इस्लामी ज़िंदगी का ख़ुलासा एक लफ़्ज़ में यह है कि अपने आप को कंट्रोल में रखकर ज़िंदगी गुज़ारी जाए। हज के सफ़र को इस क़िस्म की पाबंद ज़िंदगी के लिए ख़ास तरबियत का ज़रिया बना दिया गया है। हज की यह हैसियत रसूलुल्लाह (सल्ल०) की एक हदीस में इन लफ़्ज़ों में बयान की गई है: "जिस शख़्स ने हज के मरासिम (विधियों को) इस तरह अदा किए कि दूसरे इंसान उसकी ज़बान और उसके हाथ से महफ़ूज़ रहे तो उसके तमाम पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाएँगे (*तारीख़-ए-दमिश्क़*, खण्ड 29, पृष्ठ 362)।

हज का फ़र्ज़ अदा करते समय हाजी को ख़ास तौर पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी ज़ुबान से किसी इंसान के दिल को ठेस न पहुँचे और उसके हाथ से किसी को तकलीफ़ न हो। वही हज इंसान के गुनाहों को मिटाता है, जिसके बाद वह ऐसी ज़ुबान और ऐसे हाथ के साथ लौटे जो किसी को दुख न दें।

## ख़ुद को भुला देना

हज के दौरान आराम और साज-सज्जा की चीज़ों से भी बचने को कहा गया है। हज की शुरुआत एहराम से होती है। एहराम एक सादा लिबास होता है—एक

सफ़ेद तहमद और एक सफ़ेद चादर—जो हरम की हद में दाख़िल होते ही हर हाजी के लिए (और अहनाफ़ के मुताबिक़ ज़ियारत करने वाले के लिए भी) ज़रूरी हो जाता है। एहराम मानो एक तरह का फ़क़ीरों जैसा सादा लिबास है, जिसे काबा की ज़ियारत के लिए पहना जाता है।

यह निशानी के तौर पर पहली व्यवस्था है जिसके ज़रिये ख़ुदा अपने बंदों को यह एहसास दिलाता है कि सारे इंसान बराबर हैं। जिन बाहरी चीज़ों के आधार पर लोग एक-दूसरे पर घमंड करते हैं या किसी को ऊँचा-नीचा समझते हैं, वे सब ख़ुदा की नज़र में बिल्कुल बेकार हैं। ख़ुदा सबको एक ही नज़र से देखता है, जैसे हज के समय लाखों हाजी एक जैसा लिबास पहनकर एक समान दिखाई देते हैं। मानो हज का एहराम इस उसूल का जीता-जागता रूप है कि सभी इंसान बराबर हैं। जो लोग ख़ुदा के अच्छे बंदे बनना चाहते हैं, उनके लिए ज़रूरी है कि वे हर तरह के दूसरे "लिबास" उतार दें और एक ख़ुदाई लिबास अपना लें।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) से पूछा गया कि हाजी कौन है। आपने फ़रमाया "बिखरे बाल और धूल में अटा हुआ आदमी" (*सुनन अल-तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 3243)। इन अल्फ़ाज़ में असली हाजी की तारीफ़ बताई गई है। उलझे हुए बाल और गर्द से अटा हुआ जिस्म बा-मक़सद आदमी की पहचान है। जब कोई इंसान खुद को किसी खास काम के लिए समर्पित कर देता है, तो उसे सजने-सँवरने की फुर्सत नहीं रहती। हज में अपने इरादे से ऐसा सादा रूप अपनाने का हुक्म दरअसल मक़सद भरी ज़िंदगी जीने का एक ज़रूरी सबक़ है। इसका मतलब यह है कि इंसान ख़ुदा के मक़सद में अपने आप को इतना लगा दे कि उसे अपने बाहरी रूप को सँवारने की चिंता ही न रहे। वह छोटी-छोटी सुख-सुविधाओं को भूल जाए और बड़े मक़सद को पाने की लगन में अपनी निजी ज़रूरतों तक को पीछे छोड़ दे।

हज का हुक्म देते हुए क़ुरआन में कहा गया है: और तुम ज़ादेराह (provision for travel) लो। बेहतरीन ज़ादेराह तक़्वा (अल्लाह का डर) है। और ऐ अक़्ल वालो! मुझसे डरो। (2:197)।

क़दीम अरब में यह समझा जाता था कि हज के लिए सफ़र का सामान लेकर निकलना दुनियादारी का काम है। जो शख़्स हज के लिए इस तरह निकले कि वह दुनिया का सामान लिए बिना हज के सफ़र पर चल पड़ा हो, वह पारसा और दींदार ख़याल किया जाता था। ऐसे लोग अपने बारे में कहते कि हम मुतवक्किल (अल्लाह पर भरोसा करने वाले) हैं (*सहीह अल-बुखारी*, हदीस संख्या 1523)। यानी हम ख़ुदा के सिवा किसी चीज़ पर भरोसा नहीं करते। मगर क़ुरआन में यह बताया गया कि इस क़िस्म की ज़ाहिरी नुमाइश का नाम दीनदारी नहीं है। दीनदारी का तअल्लुक़ दिल और ज़ेहन से है, न कि किसी क़िस्म के बाहरी मुज़ाहिरे से। आदमी को जिस चीज़ से बचना है वह यह है कि उसका दिल और उसका ज़ेहन ग़ैरुल्लाह की "हुब्बे शदीद" गहरी मुहब्बत (2:165) से खाली हो, न यह कि उसकी झोली में कोई खाने-पीने का सामान नज़र न आता हो।

## हज के मसाएल

हज इस्लाम का पाँचवाँ रुक्न है। हर मुसलमान मर्द और औरत पर जो इस्तिताअत (सामर्थ्य) रखता हो ज़िन्दगी में एक बार हज करना फ़र्ज़ है। हज की अदायगी के पाँच दिन हैं, 8 ज़िलहिज्जा से 12 ज़िलहिज्जा तक।

हज के लिए जाने वाले मक्का पहुँचने से पहले एक मुक़र्रर मक़ाम पर एहराम (हज का लिबास) पहनते हैं। इस मक़ाम को मीक़ात कहा जाता है। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बाशिंदों की मीक़ात यलमलम की पहाड़ी है। मदीना की तरफ़ से

आने वालों के लिए ज़ुल-हुलैफ़ा, कूफ़ा, बसरा और बग़दाद की तरफ़ से आने वालों के लिए ज़ात-ए-इरक़, तुर्की और शाम की तरफ़ से आने वालों के लिए जुहफ़ा है। मक्का पहुँचने से पहले मीक़ात पर एहराम बाँध लेना ज़रूरी है।

8 ज़िलहिज्जा को यौम-ए-तरविया भी कहते हैं। इस तारीख़ को रात में या सुबह की नमाज़ के फ़ौरन बाद ग़ुस्ल (स्नान) करके एहराम की एक चादर तहमद की तरह पहन लें और दूसरी ओढ़ लें। ख़ुशबू लगाएँ। हरम में पहुँचकर काबा का तवाफ़ करें। मक़ामे इब्राहीम पर दो रकअत नमाज़, तवाफ़ के बाद पढ़ें। दुआ और इस्तिग़फ़ार (क्षमा-याचना) करें। इसके बाद दो रकअत नमाज़ एहराम की नियत से अदा करें। जब यह नमाज़ पढ़ें तो सर एहराम की चादर से ढका हुआ हो। नमाज़ पूरी कर लें तो सर से चादर हटा लें और इस तरह नियत करें: "ऐ अल्लाह मैं हज का इरादा करता हूँ, तू इसे मेरे लिए आसान कर दे और मेरी तरफ़ से इसे क़बूल फ़रमा। (*मुसन्नफ़ अब्दुर रज़्ज़ाक़*, हदीस संख्या 9703)

एहराम बाँधने से लेकर हज ख़त्म होने तक उठते-बैठते और हज के अरकान अदा करते हुए बार-बार नीचे दी जारही दुआ पढ़ी जाती है जिसे तलबिया कहते हैं। मर्द बुलंद आवाज़ से तलबिया कहें और औरतें आहिस्ता-आहिस्ता:

*लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक, लब्बैक ला-शरीक लका लब्बैक,*
*इन्नल-हम्दा वन-निअमता लका वल-मुल्क, ला शरीक लक।*

لَبَّيْكَ اللَّهُمَّ لَبَّيْكَ، لَبَّيْكَ لاَ شَرِيكَ لَكَ لَبَّيْكَ، إِنَّ الحَمْدَ وَالنِّعْمَةَ
لَكَ وَالمُلْكَ، لاَ شَرِيكَ لَكَ۔

"हाज़िर हूँ ख़ुदाया, मैं हाज़िर हूँ। हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं

हाज़िर हूँ। तारीफ़ और नेमत तेरे ही लिए है और बादशाही में तेरा कोई शरीक नहीं।" (*सहीह बुख़ारी*, हदीस संख्या 1549; *सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1184)

हज के दौरान एक बार सफ़ा और मरवा के दरमियान सई करना वाजिब (अनिवार्य) है। यह सई अरफ़ात की हाज़िरी से पहले या नफ़ली तवाफ़ या तवाफ़-ए-ज़ियारत के बाद कर सकते हैं। तवाफ़-ए-ज़ियारत (मिना से वापसी के बाद) करना अफ़ज़ल है। कमज़ोर लोग भीड़ से बचने के लिए पहले ही इस ज़िम्मेदारी को अदा कर सकते हैं।

तवाफ़े काबा के सात चक्कर हैं। पहले हजरे अस्वद का इस्तिलाम (हजरे अस्वद को बोसा देना, छूना या उसकी तरफ़ इशारा करना) करें। इसके बाद इज़्तिबाअ करें, यानी शुरुआती तीन चक्कर में चादर को दाहिने कंधे के नीचे से निकालकर दोनों कोनों को बाएँ कंधे पर डाल लें और तेज़ी से अकड़ कर चलें, जिसे रमल कहते हैं (औरतों को इज़्तिबा और रमल की ज़रूरत नहीं), बाक़ी चार चक्कर दस्तूर के मुताबिक़ करें। तवाफ़ के दौरान दुआ पढ़ते रहें। आख़िर में मक़ामे इब्राहीम पर दो रकअत नमाज़ पढ़ें। इसके बाद मुल्तज़म पर आएँ और खूब दुआ करें।

इसके बाद ज़मज़म पिएँ और दुआ करें। फिर सई के लिए बाबुस सफ़ा से होकर सफ़ा की तरफ़ चलें और फिर सफ़ा से मरवा की तरफ़। अब सई का एक फेरा पूरा हो गया। इसी तरह सात फेरे सफ़ा से मरवा और मरवा से सफ़ा तक करें। इस सई के दौरान तकबीर व तहलील और दुआ करते रहना चाहिए। सई में मर्दों को मीलैन अख़ज़रैन (दो हरे निशानात) के बीच दौड़कर चलना चाहिए। सई में सात फेरे इस तरह करें कि सातवाँ फेरा मरवा पर ख़त्म हो।

8 ज़िलहिज्जा की सुबह इसके बाद मिना के लिए रवाना होना है। दोपहर से पहले वहाँ पहुँच जाएँ ताकि वहाँ ज़ुहर की नमाज़ अदा कर सकें। मिना में कुल मिलाकर पाँच दिन ठहरना है। मिना में पहले 8 ज़िलहिज्जा की ज़ुहर से 9 ज़िलहिज्जा की फ़ज्र तक पाँच नमाज़ें, जहाँ तक हो सके मस्जिद-ए-ख़ैफ़ में पढ़ी जाती हैं। 9 ज़िलहिज्जा को यहाँ से अरफ़ात जाना है और वहाँ ठहरना है। यह वुक़ूफ़े अरफ़ा (मैदाने अरफ़ा में ठहरना) ही हज का रुक्ने आज़म (सबसे बड़ा स्तंभ) है। यहाँ ज़ुहर और असर की नमाज़ एक साथ पढ़ी जाती है। अरफ़ात से 9 ज़िलहिज्जा को वापस आकर रात को मुज़दलिफ़ा में ठहरना है। फिर 10 ज़िलहिज्जा को तुलूए आफ़ताब (सूरज निकलने) से पहले मुज़दलिफ़ा से चलकर दोबारा मिना आना है। इस सब के बीच तलबिया और दुआएँ जारी रहनी चाहिएं। एक दुआ यह है:

> "अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं। सारी बादशाहत और सारी तारीफ़ उसी के लिए है। वही ज़िंदगी देता है और वही मौत देता है, और वह हर चीज़ पर क़ादिर है।" (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 4569)

सूरज डूबने तक मैदाने अरफ़ात में रहना सुन्नत है। 10 ज़िलहिज्जा को मग़रिब की नमाज़ मैदाने अरफ़ात में पढ़े बिना मुज़दलिफ़ा जाना है। मुज़दलिफ़ा में रात को मग़रिब और इशा की नमाज़ मिलाकर पढ़नी है। इस सफ़र में वादिए मुहस्सिर के सिवा हर जगह ठहरना है। 10 ज़िलहिज्जा ही को फिर मिना आना है। मुज़दलिफ़ा और मिना के दरमियान तीन मक़ाम हैं जिन्हें जमरतुल-ऊला, जमरतुल-वुस्ता

और जमरतुल -अक़्बा कहते हैं। इन जगहों पर अलग अलग वक़्तों में तीन बार सात-सात कंकरियाँ मारी जाती हैं।

रमी (कंकरी मारने) के बाद मिना में कुर्बानी करें। कुर्बानी के बाद हल्क़ या तक़सीर (सर के बाल पूरे मुँडाना या छोटे कराना) है। इसके बाद ग़ुस्ल करके सामान्य कपड़े पहन लें। कुर्बानी के लिए मज़बह जाना पड़ता है। क़ाफ़िले के दो-तीन अफ़राद वकील बनकर सबकी तरफ़ से कुर्बानी कर सकते हैं। हर हाजी को मज़बह जाना ज़रूरी नहीं। हल्क़ या तक़सीर के बाद एहराम की पाबंदियाँ, सिवाय रफ़स के, उठ जाती हैं।

अब हाजी को तवाफ़े ज़ियारत करना है। 10 तारीख़ को इनसे फ़ारिग़ होकर सूरज दूबने से पहले अगर तवाफ़े-ज़ियारत के लिए मक्का जाकर वापस आ सकते हों तो बेहतर है। वरना 12 तारीख़ को सूरज डूबने तक यह तवाफ़ किया जा सकता है। तवाफ़े ज़ियारत के वक़्त ज़्यादा से ज़्यादा ज़िक्र और दुआ में मशग़ूल रहना चाहिए।

तवाफ़े ज़ियारत के बाद फिर मिना वापस आना है और ग्यारह और बारह दोनों तारीख़ों में जमरात पर रमी करना है। कंकरियाँ मारते हुए यह कहना चाहिए:

*"रज्मन् लिश्शैतानि व रिज़न् लिर्रहमान"*

رَجْمًا لِّلشَّيْطَانِ وَ رِضًا لِّلرَّحْمَانِ

(शैतान को मारने के लिए और अल्लाह की रज़ा हासिल करने के लिए)।

मिना वापस आकर रमी करते वक़्त पहले छोटे शैतान, फिर दरमियान वाले शैतान और फिर बड़े शैतान पर कंकरियाँ मारें। यही मस्नून तरीक़ा है। मुज़दलिफ़ा से वापसी पर तीन रातें मिना में गुज़ारना सुन्नत है। दो रात गुज़ारकर 12 ज़िलहिज्जा को ग़ुरूब से पहले मिना से जा सकते हैं।

अब आप हाजी हो गए। इसके बाद जितने दिन मक्का में ठहरें, रोज़ाना काबा का तवाफ़ और दुआ कीजिए और वापस होने के दिन तवाफ़े विदा करके यहाँ से वापस जाएँ।

## मदीना की हाज़िरी

मदीना जाना, मस्जिदे नबवी में नमाज़ पढ़ना और रौज़ा-ए-रसूल पर दरूद पढ़ना अगरचे हज के अरकान (अनिवार्य कामों) व फर्ज़ों में दाख़िल नहीं, इसके बावजूद इसका बहुत सवाब है और हाजी को ज़रूर वहाँ भी हाज़िरी देनी चाहिए। हाजी को चाहिए कि तवाफ़े विदा के बाद मक्का से मदीना के लिए रवाना हो।

मदीना के सफ़र में ज़बान पर रसूलुल्लाह (सल्ल०) के लिए ज़्यादा से ज़्यादा दरूद जारी रहना चाहिए। मदीना पहुँचकर ग़ुस्ल करे और मस्जिदे नबवी में दाख़िल होकर दो रकअत नमाज़ पढ़े और इसके बाद दुआ करे। नमाज़ के बाद अदब के साथ रौज़ा शरीफ़ की जालियों के पास आए और सलात व सलाम पढ़े। मदीना में ठहरने के दिनों में नमाज़ें ज़्यादा से ज़्यादा मस्जिदे नबवी में अदा करे।

मस्जिदे नबवी में नमाज़ और दरूद से फ़ारिग होकर मदीना के उन जगहों की ज़ियारत करना चाहिए जिनसे इस्लाम की तारीख़ जुड़ी हुई है, मिसाल के तौर पर जन्नतुल बक़ीअ, जहाँ बहुत से सहाबा दफ़्न हैं, मस्जिदे कुबा जहाँ रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने मदीना आकर पहली नमाज़ पढ़ी, जबले उहुद जहाँ मुसलमानों से दूसरी बड़ी जंग हुई, मस्जिद क़िब्लतैन जहाँ ठीक हालाते नमाज़ में क़िबले के बदलने का हुक्म नाज़िल हुआ, वग़ैरह।

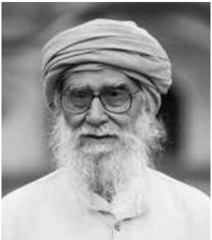

**मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ** (1925–2021) एक इस्लामी विद्वान, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और शांति दूत थे। उन्होंने 200 से अधिक पुस्तकों की रचना की और हज़ारों व्याख्यान रिकॉर्ड किए, जिनमें आधुनिक शैली और तर्कसंगत भाषा में इस्लाम की व्याख्या प्रस्तुत की गई। उनका अंग्रेज़ी अनुवाद *The Quran* अपनी सरलता, स्पष्टता और समकालीन शैली के कारण व्यापक रूप से सराहा गया है।

उन्होंने वर्ष 2001 में सेंटर फ़ॉर पीस एंड स्पिरिचुएलिटी (CPS इंटरनेशनल) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य लोगों की सोच को ईश्वर-केंद्रित जीवन की ओर मोड़ना और इस्लाम को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत करना था, जो शांति, आध्यात्मिकता और सह-अस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित है।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान ने 21 अप्रैल 2021 को नई दिल्ली, भारत में इस संसार से विदा ली। किंतु उनकी बौद्धिक और आध्यात्मिक विरासत *CPS International* के माध्यम से आज भी आगे बढ़ रही है।

www.mwkhan.com www.cpsglobal.org

# हज की हक़ीक़त

यह पुस्तिका हज की रूह, उसके रूहानी पैग़ाम की व्याख्या पेश करती है। हज सिर्फ़ रस्मों का नाम नहीं, बल्कि अल्लाह से गहरा तअल्लुक़, तक़वा, इंसानी बराबरी, सब्र, कुर्बानी और बंदगी भरी ज़िंदगी अपनाने का अहद है। यह किताब हाजी को हज की सच्ची रूह, उसके मक़सद और इंसान की ज़िंदगी में पैदा होने वाले रूहानी बदलाव से वाक़िफ़ कराती है।

PDF

Goodword Books
CPS International